सद्गुरवे नमः

संत कबीर की विवेकधारा से अनुप्राणित

पारख प्रकाश

कबीर जयन्ती विशेषांक

वर्ष 50

जुलाई + अक्टूबर
2020

अंक 1

ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, एकता तथा मानव-धर्म-प्रेरक हिन्दी पत्रिका

प्रवर्तक
सद्गुरु श्री रामसूरत साहेब
श्री कबीर मन्दिर, बड़हरा
पोस्ट—मद्दोबाजार
जिला—गोंडा, उ०प्र०

आदि संपादक
सद्गुरु श्री अभिलाष साहेब

संपादक
धर्मेन्द्र दास

आदि व्यवस्थापक
प्रेम प्रकाश

मुद्रक एवं प्रकाशक
गुरुभूषण दास

पारख प्रकाश इंटरनेट पर
www.kabirparakh.com

वार्षिक शुल्क : 50.00
एक प्रति : 13.00
आजीवन सदस्यता शुल्क
1250.00

विषय-सूची

	लेखक	पृष्ठ
कविता		
चदरिया झीनी रे झीनी	सद्गुरु कबीर	1
जीवन का क्रिकेट देखो	दिनेन्द्र दास	20
मृत्यु	बरसाइत दास महंत	62
साथी तेरा वही है	जितेन्द्र दास	63
तू बन जा दिवाना राम के	हेमन्त हरिलाल साहू	64
किसने परमशान्ति पाया है	जितेन्द्र दास	64

स्तंभ

पारख प्रकाश / 2 व्यवहार वीथी / 17 परमार्थ पथ / 31 बीजक चिंतन / 38

लेख

कबीर : आदमीवाद का झंडाबरदार	श्री सुकन पासवान 'प्रज्ञाचक्षु'	6
कबीर का सर्जनात्मक दु:खबोध	श्री अरविन्द त्रिपाठी	13
मोर हीरा हेराय गा कचरे में	श्री कमलापति पाण्डेय	21
धर्म क्या है?	श्रद्धेय संत श्री ज्ञान साहेब जी	33
कबीर खड़ा बाजार में	धर्मेन्द्र दास	40
कबीर : एक धर्मवैज्ञानिक		54

कहानी

आप बताइये	श्री भावसिंह हिरवानी	49

नम्र निवेदन

सन् 1971 में जब पारख प्रकाश का प्रकाशन शुरू हुआ था तब इसे स्थायी बनाने के लिए इसकी आजीवन सदस्यता प्रारंभ की गयी थी और उस समय इसका आजीवन सदस्यता शुल्क 100 रु. रखा गया था जो इस समय क्रमशः बढ़ते हुए 1250 रु. है।

प्रायः आजीवन सदस्यता 20 या 25 वर्ष की मानी जाती है, परंतु सद्गुरु कबीर के विचारों के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से हम अपने उन सभी ग्राहकों को पारख प्रकाश भेजते रहे हैं जो 30-40 वर्ष पूर्व आजीवन सदस्य बने थे। परंतु कागज की कीमत तथा प्रकाशन व्यय में लगातार वृद्धि होने के कारण अब उन ग्राहकों को पत्रिका भेजना कठिन हो रहा है जो 30-40 वर्ष पूर्व आजीवन सदस्य बने थे। अतः आजीवन ग्राहक नं. 1 से लेकर 1300 तक की पत्रिका मार्च 2021 के बाद बंद कर दी जायेगी।

ग्राहक नं. 1 से 1300 तक के जो आजीवन सदस्य हैं, यदि आप आगे भी पारख प्रकाश पढ़ना चाहते हैं और सद्गुरु कबीर साहेब के मानवतावादी विचारों के प्रचार-प्रसार में सहयोगी बने रहना चाहते हैं तो वर्तमान वार्षिक सदस्यता शुल्क 50 रु. या आजीवन सदस्यता शुल्क 1250 रु. मार्च 2021 तक अवश्य भिजवा दें। आप अपना

1. कबीर पारख संस्थान वास्ते पारख प्रकाश
   यूको बैंक, खाता नं. 19780100000003, IFSC Code : UCBA-0001978
2. कबीर पारख संस्थान-पारख प्रकाश विभाग
   यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, खाता सं. 538702010001907, IFSC Code : UBIN 0553875

R.N.I.'s Regd. No. 18528/71 Postal Regd. No. A.D. 253/2000

सूचना

प्रिय पाठक, आपको यह सुविदित है कि कोरोना के कारण मार्च के अंतिम सप्ताह से ही यातायात के सारे साधन बंद हैं। जो शुरू हैं, वह नाम मात्र को है। इसके साथ ही अन्य बहुत-सी सेवायें तथा गतिविधियां बंद होने के कारण पारख प्रकाश का अप्रैल 2020 अंक आपको समय से नहीं भेजा जा सका।

प्रकाशन कार्य बंद होने के कारण पारख प्रकाश का जुलाई अंक भी समय से प्रकाशित नहीं हो सका। इसलिए पारख प्रकाश का जुलाई तथा अक्टूबर अंक एक साथ प्रकाशित किया जा रहा है। कोरोना संकट के कारण जो व्यवधान उपस्थित हुआ है उसे ध्यान में रखते हुए आप अपना सहयोग पूर्ववत बनाये रखेंगे, इसका हमें पूर्ण विश्वास है।

निवेदन

1. पारख प्रकाश प्रतिवर्ष जनवरी, अप्रैल, जुलाई एवं अक्टूबर में प्रकाशित होता है। यदि इन महीनों की आखिरी तारीख तक आपको अंक न मिले, तो इसकी शिकायत अवश्य भेजें, ताकि आपको दूसरी प्रति भेजी जा सके। देर से शिकायत मिलने पर दूसरी प्रति भेजने में हमें काफी असुविधा होती है।

2. आशा है यह पत्रिका आपके लिए रुचिकर, ज्ञानवर्धक एवं प्रेरणादायी सिद्ध हुई होगी तथा आगे भी आप इसके ग्राहक बने रहना पसन्द करेंगे और दूसरों को भी इसके ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करेंगे। इसे अधिक स्थायी तथा नियमित बनाने के लिए आप स्वयं इसके आजीवन ग्राहक तो बनें ही दूसरों को भी आजीवन ग्राहक बनने के लिए प्रेरित करें।

3. यदि आपका शुल्क इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है तो अगले अंक के लिए अपना शुल्क यथाशीघ्र भेज दें, जिससे अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र तथा शुल्क भेजते समय अपना ग्राहक नं० अवश्य लिखें।

एक प्रति 13 रुपये | वार्षिक 50 रुपये | आजीवन 1250 रुपये

लेख, कविता, सदस्यता-शुल्क भेजने तथा सब प्रकार के पत्र व्यवहार का पता

पारख प्रकाश

संत कबीर मार्ग, प्रीतमनगर

प्रयागराज–211011 (उ. प्र.)

Vist us : www.kabirparakh.com

E-mail : kabirparakh@yahoo. com

ग्राहक नं०

कबीर पारख संस्थान के लिए गुरुभूषण दास द्वारा प्रकाशित एवं इण्डियन प्रेस, प्रा. लि., पन्नालाल रोड, प्रयागराज से मुद्रित

सद्गुरवे नमः

को हिन्दू को तुरुक कहावै,
एक जिमी पर रहिये
—सन्त कबीर

दुर्मति केर दोहागिन मेटै, ढोटहि चाँप चपेरे ।
कहहिं कबीर सोई जन मेरा, जो घर की रारि निबेरे ॥ सद्गुरु कबीर, बीजक ॥

वर्ष 50] प्रयागराज, श्रावण, वि. सं. 2077, जुलाई 2020, सत्कबीराब्द 622 [अंक 1

चदरिया झीनी रे झीनी, राम नाम रस भीनी ॥ टेक ॥
अष्टकमल का चरखा बनाया, पाँच तत्त्व की पूनी ।
नौ दस मास बुनन को लागे, मूरख मैली कीनी ॥ 1 ॥
जब मोरि चादर बन घर आई, रंगरेज को दीनी ।
ऐसा रंग रंगा रंगरेज ने, लालों लाल कर दीनी ॥ 2 ॥
चादर ओढ़ शंका मत करियो, दो दिन तुमको दीनी ।
मूरख लोग भेद नहिं जाने, दिन दिन मैली कीनी ॥ 3 ॥
ध्रुव प्रह्लाद सुदामा ने ओढ़ी, शुकदेव ने निर्मल कीनी ।
दास कबीर ने ऐसी ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी ॥ 4 ॥

× × ×

तू तो राम सुमिर जग लड़ने दे ॥ टेक ॥
कोरा कागज काली स्याही, लिखत पढ़त वहि पढ़ने दे ॥ 1 ॥
हाथी चलत अपनी गति से, कुत्ता भुकै तो भुकने दे ॥ 2 ॥
चण्डी भैरव सितला देवी, देव पुजे तो पुजने दे ॥ 3 ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, नरक परै वहि पड़ने दे ॥ 4 ॥

पारख प्रकाश

ना मैं हिन्दू न मुसलमान

लगभग 25-30 वर्ष पूर्व की घटना है। गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी का एक जगह कार्यक्रम था। शाम को 6-7 बजे गुरुदेव जी अपने निवास में बैठे कुछ लोगों से चर्चा कर रहे थे। चर्चा के दौरान एक युवक ने गुरुदेव जी से कहा—साहेब जी! मैं एक गीत सुनाऊं। गुरुदेव जी से स्वीकृति पाकर उस युवक ने गाना शुरू किया—"तू हिन्दू बनेगा न मुसलमान बनेगा, इंसान की औलाद है इंसान बनेगा।" गाने के इस बोल को सुनते ही वहां बैठे प्रौढ़ उम्र के एक सज्जन उलझ गये और कहने लगे—"क्या इंसान बनने की बकवास कर रहा है। अरे, तू हिन्दू के घर जन्मा है, हिन्दू के घर रह रहा है और हिन्दू होकर जी रहा है तथा हिन्दू होकर ही तू मरेगा।" कहने वाला अपने को कट्टर हिन्दू मानता रहा होगा, इसलिए उसकी दृष्टि में हिन्दू होना, हिन्दुत्व की बात कहना ही जायज है, इंसान होना, इंसान बनकर जीना और इंसानियत की बात कहना गलत है। एक कट्टर मुसलमान कहलाने वाले की सोच भी ऐसी ही होगी।

ऐसा नहीं है कि सभी हिन्दू कहलाने वालों की, सभी मुसलमान कहलाने वालों की या अन्य कुछ भी कहलाने वाले सभी लोगों की सोच ऐसी ही है। सभी मत-मजहब, समाज, संप्रदाय के अनुयायियों में उदारतापूर्वक सोचने वाले लोग हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश सभी मत-मजहब-संप्रदाय में उदार सोच रखने वालों की संख्या उत्तरोत्तर घटती जा रही है। लोग कट्टर एवं संकुचित होते जा रहे हैं। सभी अपने को दूसरों से श्रेष्ठ सिद्ध करने में लगे हुए हैं और अपने को दृढ़तापूर्वक हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, जैन, यहूदी, ईसाई आदि कहने में गर्व का अनुभव करने लगे हैं। शायद ही कोई अपने को इंसान कहने या कहलाने में गर्व का अनुभव करता हो। यदि कोई अपने को गर्व के साथ इंसान कहने लगे तो लोग उसे पागल-झक्की समझने लगेंगे।

आप हिन्दू बनकर रहें चलेगा, मुसलमान बनकर रहें चलेगा; बौद्ध, जैन, यहूदी, ईसाई, पारसी, सिक्ख आदि बनकर रहें चलेगा; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अतिशूद्र बनकर रहें चलेगा, लेकिन आदमी बनकर रहें, लोग आपको जीने नहीं देंगे। आप कुछ भी बनकर रहें दुनिया के लोग आपको अपनाने को, अपने मत-मजहब, समाज-संप्रदाय में मिलाने को तैयार हो जायेंगे, किन्तु आदमी बनकर रहें, अपने को सिर्फ आदमी मानें शायद ही कोई आपको अपनाने को या अपने मत-मजहब, समाज-संप्रदाय में मिलाने को तैयार होगा। लोग आपको आदमी को छोड़कर कुछ न कुछ बनने को मजबूर कर देंगे। आप अपने को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, बौद्ध, जैन आदि कुछ भी न मानें तो भी लोग आपको येन-केन प्रकारेण कुछ-न-कुछ सिद्ध करके ही छोड़ेंगे तभी उनकी आत्मा को शांति मिलेगी, अन्यथा उनकी आत्मा मरने के बाद भी अशांत बनकर भटकती रहेगी।

यही तो कबीर के साथ हुआ था और हो रहा है। सब जानते हैं कि कबीर ने प्रसंगवशात कई जगह अपने को जुलाहा कहा है, परंतु उन्होंने अपने को कहीं भी न हिन्दू कहा है न मुसलमान। उन्होंने साफ शब्दों में अपने को हिन्दू-मुसलमान होने से नकार दिया है और हिन्दू-मुसलमान दोनों को झूठा कहा है। उनके ही शब्दों में देखें—

हिन्दू कहौं तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
ना मैं हिन्दू न मुसलमान, न जैनी रंगरेज।
झूठे गर्भ भूलो मति कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई।
को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये।
कहहिं कबीर राम रमि रहिये, हिन्दू तुरुक न कोई।

इतने साफ शब्दों में जो अपने को न हिन्दू कहता है और न मुसलमान और कहता है कि न कोई हिन्दू है न मुसलमान उस कबीर को लोग या तो हिन्दू सिद्ध करने में व्यस्त और उलझे हैं या मुसलमान। कबीर पर

लिखने वाले किसी भी विद्वान लेखक की पुस्तक को देख लीजिए उसके प्रारंभ के कितने ही पृष्ठ कबीर को या तो विधवा ब्राह्मणी (हिन्दू) की संतान सिद्ध करने में रंगे हुए हैं या नीरू-नीमा जुलाहे (मुसलमान) की संतान सिद्ध करने में या फिर और ज्यादा हो गया तो आकाश से ज्योति रूप में कमल पुष्प पर अवतरित सिद्ध करने में रंगे हैं। शायद ही किसी ने लिखा हो कि कबीर सिर्फ और सिर्फ आदमी की संतान हैं। आकाश से ज्योति रूप में अवतरित होना बताना तो सिर्फ भावुकता, मिथ्या महिमा और कल्पना है। इसके बाद कबीर चाहे विधवा ब्राह्मणी की संतान हो, चाहे नीरू-नीमा की और चाहे किसी अन्य की, हैं तो आदमी की संतान। परंतु कबीर पर लिखने वाले विद्वान लेखकों को स्वयं को आदमी होने में संतोष नहीं है, आदमी होने में उन्हें स्वयं को अधूरापन लगता है, इसलिए वे कबीर को भी आदमी नहीं रहने देना चाहते। या तो उन्हें हिन्दू सिद्ध करके छोड़ेंगे या मुसलमान।

आप दुनिया में कहीं भी चले जायें। आपको सर्वत्र हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, बौद्ध, जैन, सिक्ख आदि मिल जायेंगे, अमेरिकन, चीनी, अंग्रेज, रसियन, जर्मन, जापानी, अरबी, नेपाली, भारतीय आदि मिल जायेंगे, डॉक्टर, इंजीनियर, लेक्चरर, प्रोफेसर, वकील, व्यापारी, किसान, कलेक्टर, क्लर्क, चपरासी आदि मिल जायेंगे, इनके अलावा और भी बहुत कुछ मिल जायेंगे, केवल आदमी कहीं नहीं मिलेगा।

कहा जाता है कि ज्येष्ठ की भरी दोपहरी में एक बाबा हाथ में जलती हुई लालटेन लेकर शहर के चौराहे पर कुछ खोज रहे थे। लोगों को बाबा के हाथ में ज्येष्ठ की भरी दोपहरी में जलती लालटेन देखकर आश्चर्य हुआ और उन्होंने बाबा से पूछा—बाबा! क्या खोज रहे हो? बाबा ने कहा—बेटा! आदमी खोज रहा हूं। लोगों ने आश्चर्य से पूछा—यहां इतने लोग आ-जा रहे हैं, खड़े हैं, क्या ये आदमी नहीं हैं? बाबा ने कहा—बेटा! इनमें से कोई ब्राह्मण है, कोई क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, नाई, धोबी, लोहार, मुराव, तेली, काछी, यादव, सुनार आदि हैं, हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, जैन हैं, बंगाली, मद्रासी, पंजाबी, गुजराती, उड़िया, असमी, महाराष्ट्रियन, दक्षिण भारतीय हैं, नेता, अफसर, क्लर्क, डॉक्टर, इंजीनियर, वकील, जज, किसान, व्यापारी आदि हैं। किसी से भी पूछकर देखो शायद ही कोई कहे कि मैं आदमी हूं। बाहर से देखने पर तो चारों तरफ आदमी की भीड़ दिखाई पड़ती है, परन्तु इस भीड़ में आदमी ही खो गया है। जबकि आदमी ही सच है।

कहीं किसी जगह सैकड़ों-हजारों लोग बैठे हों, कोई अपरिचित व्यक्ति यह नहीं बता सकता कि इन लोगों में कौन हिन्दू है, कौन मुसलमान, कौन बौद्ध, जैन, ईसाई है, कौन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अतिशूद्र है, कौन-कौन क्या-क्या करते हैं, लेकिन यह बता देगा कि यहां इतने आदमी बैठे हैं। जिसे देखते ही जाना-पहचाना जा सके, जिसके लिए पूछना न पड़े वही तो सच है, किन्तु जिसे देखकर जाना-पहचाना न जा सके, जिसके लिए पूछना पड़े वह झूठ है, कृत्रिम है। किसी आदमी को देखकर यह नहीं पूछना पड़ता कि तुम आदमी हो या कुछ, किन्तु यह पूछना पड़ता है कि तुम हिन्दू हो या मुसलमान, ईसाई, यहूदी, बौद्ध-जैन, ब्राह्मण-शूद्र आदि। यदि कहा जाये कि वेष और नाम के आधार पर बताया जा सकता है तो नाम और वेष दोनों कृत्रिम-बनावटी हैं। दोनों बदल भी दिये जाते हैं। जन्म से कोई नाम और वेष लेकर दुनिया में नहीं आता। जन्म के कुछ दिन बाद ही नाम तथा वेष निर्धारित किये जाते हैं, किन्तु आदमी का बच्चा आदमी के रूप में ही जन्म लेता है, किसी और रूप में नहीं।

परंतु आज के इस शिक्षित एवं सभ्य कहे जाने वाले युग में भी आदमी बनकर जीना और आदमीयत की बात कहना बहुत कठिन हो गया है। आप कुछ भी बन जायें सब चलेगा, आपको संगी-साथी, अनुयायियों की कमी नहीं होगी। यहां तक आप अपने को किसी देवी-देवता, भगवान-भगवती, ईश्वर-परमात्मा के अवतार घोषित कर दें आपके पीछे चलने वाले, आपकी पूजा करने वाले, आपको सिर-माथे पर उठा लेने वाले अंध भक्तों-

अनुयायियों की भीड़ की कमी नहीं होगी। हर समय लोग आपको घेरे रहेंगे। आपकी एक-एक बात को चाहे वह कितनी भी झूठ, अनर्गल ही क्यों न हो उसको परम प्रमाण, आप्त वाक्य मान लेंगे, परंतु आप अपने को केवल आदमी मानते हैं, और आदमीयत की बात कहते हैं, किसी शास्त्र की दुहाई नहीं देते हैं तो कोई आपकी बात सुनना नहीं चाहेगा। लोग आपको पागल समझेंगे। लोग कृत्रिमता और झूठ के इतने अभ्यस्त और आदी हो गये हैं कि सच उन्हें हजम नहीं होता।

परंतु याद रखना होगा कि कोई कितना बड़ा और महान क्यों न हो जाये यदि उसमें आदमीयत नहीं है तो उसकी सारी बड़ाई और महानता का मूल्य फूटी कौड़ी के बराबर भी नहीं है। आदमी की खासियत आदमीयत में ही है, बाहरी वैभव, ऐश्वर्य, चाकचिक्य में नहीं। आदमीयत ही आदमी की पहचान है। किसी शायर ने कितना सुंदर कहा है—

आदमीयत है तो बुनियाद है हर खूबी की।
गर यह भी न हो तो फिर धरा क्या है इंसां के पास।

कबीर जिंदगी भर इसी इंसानियत की लड़ाई लड़ते रहे। वे न हिन्दू बनकर जीये और न मुसलमान बनकर और न ही कुछ और बनकर, वे सिर्फ इंसान बनकर जीये। उनकी सिर्फ एक ही चिंता थी कि आदमी आदमी बनकर कैसे रहे और सारे पक्षपात, भेदभाव, आग्रह, दुराग्रह को छोड़कर दूसरे आदमियों के साथ कैसे आदमीयत का व्यवहार करे। वे संत, साधो, भाई, पंडित, पांडे, मोलना, काजी, अवधू, अभागा, सुभागा, बंदे, रामुरा, हंस आदि कहकर आदमी को ही संबोधित करते हैं और आदमी को आदमी से जुड़ने, प्रेम करने की ही सीख देते हैं। और कहते हैं—"मानुष तेरा गुण बड़ा।" वे हिन्दू तेरा गुण बड़ा, मुसलमान तेरा गुण बड़ा, पंडित तेरा गुण बड़ा, काजी-मोलना तेरा गुण बड़ा, ब्राह्मण तेरा गुण बड़ा, शूद्र तेरा गुण बड़ा, अवधू तेरा गुण बड़ा, साधू तेरा गुण बड़ा आदि नहीं कहते किन्तु मानुष तेरा गुण बड़ा कहते हैं, क्योंकि मनुष्यता, इंसानियत, आदमीयत ही तो सच है, बाकी तो सब कृत्रिम, बनावटी तथा झूठ है।

यदि लोग मत-मजहब, समाज-संप्रदाय, वर्ण-वर्ग, जाति जनित सारे भेदभाव, पक्षपात, आग्रह-दुराग्रह को छोड़कर दूसरे मनुष्यों का अपमान, अनादर करना तथा उनके साथ दुर्व्यहार करना छोड़कर मनुष्य मात्र से प्रेम करने लग जायें तो यह धरती आज ही स्वर्ग बन जायेगी। फिर उसे मरने के बाद किसी काल्पनिक स्वर्ग में जाने के लिए किसी देवी-देवता, भगवान-भगवती से प्रेम करने तथा रो-गिड़गिड़ाकर उसे खुश करने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। सच तो यह है कि जो आदमी के साथ प्रेम करना नहीं जानता, जिसे आदमी के साथ आदमीयत का व्यवहार करना नहीं आता वह किसी देवी-देवता, भगवान-भगवती, खुदा-गॉड से भी प्रेम नहीं कर सकता। उसका सब कुछ एक दिखावा एवं छलावा है। इसीलिए ईसा मसीह ने कहा है—जो यह कहता है कि मैं ईश्वर से प्रेम करता हूं किन्तु अपने पड़ोसियों से प्रेम नहीं करता। कैसे माना जाये कि वह ईश्वर से प्रेम करता है, क्योंकि जो ईश्वर दिखाई नहीं देता उससे तो वह प्रेम कर रहा है और जो पड़ोसी दिखाई दे रहे हैं, उनसे वह प्रेम नहीं कर रहा है। सीधी बात है मनुष्यों से प्रेम करना ही ईश्वर से प्रेम करना है। मनुष्यों (प्राणियों) को हटाकर कहीं कोई ईश्वर मिलने वाला नहीं है। इसीलिए कहा जाता है—नर सेवा नारायण सेवा। नर-सेवा नारायण-सेवा तभी बनेगी जब नर को ही नारायण माना जायेगा। यदि नर अलग है और नारायण अलग है तो नर-सेवा नारायण-सेवा कभी नहीं बन सकती। इस संदर्भ में स्वामी विवेकानंद का यह कथन कितना सटीक है—मैं उस ईश्वर से प्रेम करता हूं जिसे मूर्ख लोग मनुष्य कहते हैं।

आपकी मान्यता चाहे जो हो, आप मनुष्यों (प्राणियों) से अलग ईश्वर मानते हैं तो मानिये, इसके लिए आपको रोकता कौन है, परन्तु मनुष्यता का अपमान-तिरस्कार तो न करें, मनुष्य को नीच, अछूत पतित तो न कहें। अलग ईश्वर मानकर उसकी भक्ति-पूजा करने में आपको खुशी मिलती है तो अवश्य उसकी भक्ति-पूजा करें, परन्तु मनुष्यों से द्वेष, घृणा, वैर-

विरोध, कलह तो न करें। याद रखें, किसी भी मनुष्य से द्वेष, घृणा, वैर-विरोध, कलह करने से आपका ईश्वर कभी खुश नहीं होगा। वह तो मनुष्यमात्र के साथ प्रेम, एकता, समता, सेवा का व्यवहार करने से ही खुश होगा। इसीलिए कबीर साहेब कहते हैं—घट-घट में वहि सांई बसतु है, कटुक बचन मत बोल रे।

इस संदर्भ में यह बात भी याद रखने लायक है कि जो आदमी को आदमी से बांटे, अलग करे, उससे दूरी बनाकर रखे वह धर्म कभी नहीं हो सकता। धर्म तो वह है जो आदमी को आदमी से जोड़े और आदमी को आदमी से प्रेम करना सिखाये। आदमी का आदमी से जुड़ना, आदमी का आदमी से प्रेम करना ही आदमी का ईश्वर से जुड़ना और ईश्वर से प्रेम करना है। कबीर जीवन भर आदमी को आदमी से जुड़ने और आदमी को आदमी से प्रेम करने की सीख देते रहे। जो आदमी से निश्छल प्रेम करता है वही तो सच्चा पंडित है—ढाई आखर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय।

विश्वप्रेम, विश्वबंधुत्व की बात बहुत कही जाती है, परंतु समझना होगा कि विश्व आखिर है क्या! पेड़, पहाड़, धरती, आकाश, नदी, समुद्र, आदि विश्व नहीं है। विश्व तो है मनुष्य, आदमी। आदमी को हटा दें तो विश्व का अर्थ ही क्या रह जायेगा। अतः मनुष्यों के साथ, आदमियों के साथ प्रेम-बंधुत्व का भाव और व्यवहार रखना और करना ही विश्वप्रेम और विश्वबंधुत्व है।

याद रखें, आप हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध-जैन, ईसाई-यहूदी, ब्राह्मण-शूद्र, बैकवर्ड-फारवर्ड, कुछ भी बनें आपमें कट्टरता आना स्वाभाविक है। यदि कट्टरता नहीं आयेगी, तो या तो हीनभावना आयेगी या द्वेष-घृणा-ईर्ष्या भावना, परंतु यदि आप इंसान-आदमी बनते हैं जो कि आप वस्तुतः हैं, तो आपमें न कट्टरता आयेगी, न हीनभावना और न द्वेष, घृणा-ईर्ष्या भावना। आपके अंदर यदि कोई भावना आयेगी तो वह है प्रेम-भावना। इसीलिए कबीर बारंबार सारे नकली लबादों को छोड़कर केवल और केवल आदमी बनने की सीख देते हैं। आदमी बनकर जीने में न कोई भेदभाव रह जाता है और न पक्षपात, आग्रह-दुराग्रह। रह जाता है केवल आदमी का आदमी के प्रति प्रेम। आदमी का आदमी के प्रति प्रेम ही सच्चा धर्म, सच्ची भक्ति और पूजा-आराधना है।

किसी ने कितना बढ़िया गाया है—

बस यही अपराध मैं हर बार करता हूं।
आदमी हूं आदमी से प्यार करता हूं॥

बुद्ध ने, महावीर ने, ईसा ने, नानक ने यही अपराध किया था। यही अपराध यदि हर आदमी करने लग जाये तो अन्य सारे अपराध अपने आप दूर हो जायेंगे और धरती में सब तरफ स्वर्ग का राज्य हो जायेगा। कबीर ने भी जीवन भर यही अपराध किया था। याद रखें, आदमी का आदमी से प्यार करना अपराध नहीं, किन्तु सच्चा धर्म है। कबीर की सारी शिक्षा आदमी को आदमी बनकर जीने और आदमी को आदमी से प्यार करने, आदमीयत का व्यवहार करने के लिए ही है। परंतु नासमझ दुनिया सब कुछ बनने के लिए तैयार हो जाती है, तैयार नहीं होती है तो केवल आदमी बनने के लिए। जिस दिन आदमी आदमी बनकर जीने और आदमी के साथ आदमीयत का व्यवहार के लिए तैयार होगा वह दिन मानवीय इतिहास का स्वर्णिम दिन होगा और एक नये स्वर्णिम युग की शुरुआत का भी दिन होगा। भले ही लोग अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार पूजा-पाठ, कीर्तन-हवन, नमाज, प्रार्थना करते रहेंगे परन्तु तब न किसी का किसी के प्रति द्वेष होगा, न ईर्ष्या, न वैर-विरोध, न भेदभाव, न पक्षपात। होगा केवल प्रेम। वह दिन कब आयेगा कहा नहीं जा सकता, परन्तु मानव यदि इस धरती पर जीवित रहना चाहता है तो उसे इसी के लिए ही प्रयास करना होगा। कबीर का अंगुली निर्देश इसी दिशा के लिए है। यदि हम इस दिशा की ओर अपना एक कदम भी आगे बढ़ा सकें तो यह मात्र कबीर के लिए ही नहीं अपितु विश्व के सभी महापुरुषों, संत-गुरुजनों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

—धर्मेन्द्र दास

कबीर : आदमीवाद का झंडाबरदार

लेखक—श्री सुकन पासवान 'प्रज्ञाचक्षु'

कबीर की उत्पत्ति को लेकर विज्ञ से लेकर सामान्य जनों तक में आज तक द्वंद्व या अंतर्विरोध कायम है। ऐसा इसलिए कि सार को छोड़कर असार पर छापा मारते रहना मानव मन की विशेषता है। कुतर्क के द्वारा व्यक्ति अपनी तथाकथित विद्वत्ता सिद्ध करने में सुगमता महसूस करता है। और येन-केन-प्रकारेण सामने वालों को चुप करा देना वह अपनी विजय मानता है। यह भूलकर कि मौन धारण करने वाला व्यक्ति गौण या अज्ञ नहीं; तत्त्व जिज्ञासु होता है। जब व्यक्ति बैखरी से पस्त पैमाल-बेहाल हो जाता है तब मौन का आश्रय ग्रहण करता है। नहीं तो कबीर की देशनाओं, आध्यात्मिक उपलब्धि, निर्भ्रांत सिद्धांतों तथा व्यावहारिकता की कसौटी पर कसी-परखी गई अवधारणाओं को सहज-सरल ढंग से स्वीकार करने के बदले, आज भी अधिसंख्य लोग उनकी उत्पत्ति, जाति तथा उपस्थिति को लेकर सिर फुटौव्वल की स्थिति में क्यों रहते?

अस्तु इस लेख में कबीर के जन्म, जाति, काज, काल को लेकर वाद-विवाद या जंजाल खड़ा करने के बदले केवल कबीर के विचार, सिद्धांत एवं व्यवहार की शाश्वतता, सामयिकता, व्यावहारिकता, आध्यात्मिकता एवं आवश्यकता पर विचार किया गया है। जिन्हें नाक छूनी होती है, वे चाहे जैसे भी नाक छुएं, कहलाता नाक छूना ही है और प्रयोजन भी इतना ही भर होता है। जैसे पानी को हम जल, नीर, मेघ, बादल, वाटर चाहे जिस नाम से पुकारें नाम के कारण जल के गुण-धर्म में तथा प्यास बुझाने की क्षमता में परिवर्तन नहीं होता, ठीक उसी तरह कबीर नीरू या नीमा की संतान हों या विधवा ब्राह्मणी की, ब्राह्मण, जुलाहा या किसी जाति की पांति के हों, हैं तो आदमी। बहस तब होनी चाहिए थी जब कबीर आदमी नहीं होते, यदि उनका काम-व्यवहार मनुष्य से इतर होता और वे मानवीय संवेदनाओं, संस्कारों तथा सरोकारों से विलग बातें करते। लेकिन कबीर जब आदमी थे, आदमीयत की बातें करते थे तथा केवल आदमी के उत्थान के लिए प्रयास करते थे तो उन्हें सब ग्रंथियों का भंजन कर आदमी तथा उद्धारक मान लेने में क्या बुराई है?

और कबीर को आदमी मानना अतार्किक तथा असत्य नहीं ठहराया जा सकता। सौभाग्य से इस बिंदु पर विवेकशीलता का लबादा ओढ़े मानव समूह एकमत है। यह पृथक विषय है कि हमारे तथाकथित मनीषियों ने आदमी में से ही बहुसंख्यकों को असुर, दानव, राक्षस, भील, बंदर, दानव, किन्नर तक तो कहा है लेकिन अपने निहितार्थों तथा स्वार्थों के कारण आदमी मानने से एतराज किया है। यह कबीर का सौभाग्य है कि वे रामायण काल में नहीं जन्मे थे, नहीं तो निश्चय ही उन्हें उनकी अक्खड़ता तथा सत्याभिव्यक्ति के कारण समाजद्रोही, मानवताद्रोही तथा समानताद्रोही समूह, असुर की श्रेणी में गणित कर चुके होते। कबीर कुछ सौ वर्ष पहले जन्म लेकर इस जंजाल तथा षड्यंत्र से मुक्त हैं, यही विवेकवानों तथा इंसानों का सौभाग्य है। कबीर आदमी के रूप में स्वीकृत हों, यही मेरा अभीष्ट है और मैं कबीर को इसलिए केवल आदमी मानकर उनका विवेचन कर रहा हूं।

प्रश्न होगा, कबीर तो आदमी हैं ही। इसे तो अंधे तथा अज्ञ भी मानते हैं। फिर कबीर को आदमी मानकर विवेचन करने की बात कौन-सी अनोखी या अनहोनी बात है? अनोखी बात तो सचमुच आदमी को आदमी मानना है ही। हमें तो आदमी को पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, संत, कसाई, पंडित, मुल्ला, आस्तिक-नास्तिक, गोरा-काला, ऊंचा-नीचा, सवर्ण-अस्पृश्य कहने-मानने की आदत पड़ी हुई है। हममें आज भी कितने हैं जो आदमी की जाति जाने बिना उसकी वाणी या ज्ञान को सुनने-स्वीकार करने को तैयार हैं? हम तो ऐसे अन्वेषी हैं कि

राम और कृष्ण को भगवान भी जाति के आधार पर मानते हैं। यदि भारतीय भगवानों में गण्य राम और कृष्ण की जाति भारतीय वर्ण व्यवस्थानुसार अस्पृश्य की होती तो अधिक संभावना है कि उन्हें भगवान मानने को हमारा मानस तैयार ही नहीं हुआ होता। मसलन वाल्मीकि, रैदास, कबीर, दादू, तुकाराम, सरीखे संतों को तुलसी, शंकराचार्य तथा विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस आदि की तुलना में कमतर महत्त्व क्यों दिया जाता?

इसलिए कबीर को केवल आदमी मानकर उनका अध्ययन करना न मात्र समीचीन है; बल्कि अध्यात्म जगत की अब तक की सर्वाधिक ज्वलंत आवश्यकता है। कबीर ने यदि इस सिद्धांत वाक्य में विश्वास किया कि—"नाहं मनुष्यो न च देवयक्षो न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राः। न ब्रह्मचारी न गृहीवनस्थो भिक्षु न चाहं निजबोध रूपः" तो इसका निहितार्थ तो यह है कि आदमी का आदमी के रूप में स्वीकृति पाना ही सर्वाधिक कठिन कार्य है। कबीर जाति-पांति व्यवस्था से पीड़ित-प्रताड़ित प्राण थे। नहीं तो क्यों कहते—"तुम कैसे ब्राह्मण पंडित हम कैसे सूद।" यदि कबीर के समय में आदमी को मात्र आदमी मानने का प्रचलन होता तो कबीर को क्या ऐसा कहना पड़ता? आदमी ही आदमी को आदमी छोड़कर कुछ भी मानने को बेचैन रहता है। इसी व्यथा से व्यथित कबीर को बाध्यतः कहना पड़ता है—"कबीर मेरी जाति को सब कोई हंसने हारु। बलिहारी इसु जाति को जिह जपियो सिरजनहारु।" लेकिन जाति की पूंछ से समरसता की स्वर्ण नगरी जलाने वालों को जाति की जानकारी सबसे पहले चाहिए। यदि समीकरण सही बैठा तो वाराह, नरसिंह, मत्स्य, पाहन, पादप तक को आदमी क्या, भगवान मानने तक में आपत्ति नहीं। और यदि जाति विपरीत हुई तो महादेव तक को ब्रात्यों तथा असभ्यों का देवता कह दिया। कबीर इस पीड़ा से पीड़ित थे। कह उठे—"ना मोहि छानि न छपरी ना मोहि घर नहीं गांऊ। मति हरि पूछे कौन है मेरो जाति न नाऊ।" लेकिन जाति का जाप करने वाले मानने को तैयार कहां थे। लठ लेकर पीछे पड़े थे। कहते थकते नहीं थे कि, "विधवा ब्राह्मणी की न सही, जुलाहे का सुत तो है ही कबीर।" कबीर को ब्राह्मण या जुलाहा कहलाने में रुचि-अरुचि नहीं थी; बल्कि उनकी बेचैनी मात्र स्वयं को आदमी कहलवाने की थी, क्योंकि बिना जाति से मुक्त हुए वे आदमी की बात कर नहीं सकते थे। इसलिए कहा—"कबीर मेरी जाति को सब कोई हंसने हारु। बलिहारी इसु जाति को जिह जपियो सिरजनहारु।"

आदमी को मात्र आदमी मनवाने की बेचैनी

कबीर के अभ्युत्थान काल में शायद ही कोई कल्पना करने को तैयार था कि कबीर आदमी से बढ़कर या घटकर कुछ भी नहीं हैं। अधिसंख्य तो कबीर को बाभन या जुलाया ठहराने की जुगाड़ में थे। लेकिन तभी कबीर के भीतर शाश्वत सत्य की चासनी पक रही थी। पक रही थी—'धन्य हैं वे जो मन के दीन हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है। धन्य हैं वे जो शोक करते हैं, क्योंकि वे शांति पाएंगे। धन्य हैं वे जो धर्म के भूखे और प्यासे हैं, क्योंकि वे तृप्त किये जाएंगे। धन्य हैं वे जो दयालु हैं, क्योंकि उन पर दया की जाएगी, धन्य हैं वे जो मन से शूद्र हैं, क्योंकि वे परमेश्वर के पुत्र कहलाएंगे। धन्य हैं वे जिनका मनुष्य ईश्वर प्रेमी होने के कारण निंदा करते हैं। वे ही पृथ्वी के नमक हैं। जो नमक को स्वादहीन करने का प्रयास करते हैं वे स्वयं स्वादहीन हो जाते हैं।' कबीर तब प्रयोग कर रहे थे कि—'संत न बन सकें तो शांत अवश्य बनें। योगी न बन सकें तो उपयोगी अवश्य बनें। चिंता छोड़, चिंतन करो, ममता छोड़ मनन करो, व्यथा छोड़ व्यवस्था करो, प्रशस्ति छोड़ प्रस्तुति करो। साधक बनो बाधक नहीं; स्वतंत्र बनो पर स्वच्छंद नहीं। चतुर बनो, पर कुटिल नहीं। प्रेमी बनो, पर पागल नहीं। न्यायी बनो, पर निर्दयी नहीं।'

कबीर की यात्रा ही इस भावना से प्रारंभ हुई—

"सुख नहीं रे दुख भरा यह माया संसार,
जन्म, जरा, मृत्यु खड़ा मिथ्या सब व्यवहार।

धन भोगों की खान है, तन रोगों की खान,
ज्ञान सुख की खान है, दुख खान अज्ञान।
सुन भव्य, मैं अनुभव कहूं अपना,
सत्य प्रभु भजन जगत सब सपना।
जो आग को न बुझा सके, वह नीर क्या,
जो लक्ष्य को न भेद सके, वह तीर क्या?
जो क्षुधा को तृप्त न कर सके वह क्षीर क्या,
जो स्वयं को जीत न सके वह वीर क्या?"

लेकिन तब कबीर को इस रूप में मानने की क्या, किसी को जानने का भी अवकाश कहां था! सब के सब तो कबीर को जाति की कतार में सजाने के लिए पागल हो रहे थे। कबीर ने वैसों को मना करने तथा मनाने के लिए यहां तक कहा—"तुम कैसे ब्राह्मण पंडित हम कैसे सूद।" तर्क के धुरंधरों ने नीरू और नीमा का हवाला दे दिया। कहा—"इस नाते तो जुलाहा ठहरे।" कबीर ने समझाया—"अस जोलाहा का मरम न जाना, जिन जग आनि पसारिन ताना। धरती आकाश दुई गाड खुदाया, चाँद सूर्य दुई नरी बनाया।"

लेकिन कबीर के इस स्पष्टीकरण की समझ काहिलों और कमअक्लों को कहां थी! जो सद्गुरु तथा गुरु का पाग बांधकर जगत पूज्य हो रहे थे उन्हें तो अहंकार के आहार तथा प्रशंसा के प्रसाद-पान से फुरसत ही नहीं थी। जो जाति व्यवस्था के अन्न-जल-वसन पर जीने के अभ्यस्त थे उन्हें इसकी समझ नहीं थी। ऐसे तमाम कमअक्लों को कबीर को कुजात ठहराने की बेचैनी थी। सब का एक गंतव्य—"कुजात ठहरा दो, सब कुछ ठहर जाएगा।" फिर जैसी मर्जी वही करो। गलत कहने वालों को ही गलत सिद्ध कर दो। गलत स्वयं सही सिद्ध हो जाएगा। इसलिए कबीर को आदमी नहीं मानने का मौन महाजंग जारी था।

लेकिन कबीर ने तत्समय प्रचलित वर्ण-भेद का तीखेपन के साथ विरोध किया। ब्राह्मणवाद, वेदवाद, और पुस्तक ज्ञान का उन्होंने तिरस्कार किया और सहज अनुभूति को जीवन का सार सर्वस्व बताया। मूर्तिपूजा, तीर्थाटन और शास्त्र-ज्ञानादि की महत्ता का खंडन किया। हिंदू-मुस्लिम एकता का नारा बुलंद किया, निर्गुण पंथ को पुरस्कृत किया और संस्कृत के कूप जल की तुलना में भाषा को बहता नीर बताकर इसकी वकालत की। पाखंड विरोध एक तरफ और उल्टबांसियां दूसरी तरफ, विद्रोही वृत्ति एक तरफ और गुरु की असीम महत्ता का ज्ञान दूसरी तरफ, नारी के प्रति कठोर दृष्टिकोण, श्रम मान्यता और जीवन की निरीहता, निर्धनता और सरलता को मान्यता प्रदान करना इत्यादि बातों के पीछे कबीर का एक ही दृष्टिकोण काम कर रहा था और वह था आदमी मानने-मनवाने का दृष्टिकोण; क्योंकि कबीर जानते थे कि बिना इस सत्यस्वीकारोक्ति के सब कुछ वेद-भेद और वर्णभेद की बलि चढ़ जाएगा और आदमी को उसका अभीष्ट नहीं मिलेगा। कबीर के आलोचकों तथा हिंदू धर्म की धुरि को पाताल तक पहुंचाने के लिए पामर-पागलों को सबसे पहले कबीर की जाति और गुरु को प्रमाणित करने की सर्वाधिक बेचैनी थी। तर्क के तरकश से एक से बढ़कर एक तीर निकालकर इनसे कबीर को रामानन्द का शिष्य तथा जाति का जुलाहा सिद्ध करने का प्रयास किया। चूंकि लेखक और पाठक उनके थे इसलिए उनके मिथ्या बकवासों को मानने-मनवाने की परंपरा चली। प्रतिकार की आवाज सुनने की उनकी आदत ही नहीं थी। इसलिए अपनों ने जो कुछ लिखा उसे ही अकाट्य प्रमाण मान लिया। समर्थन में कबीर के इस कथन को भी उद्धृत किया कि—"पूरब जनम हम ब्राह्मण होते ओछे करम तप हीना। रामदेव की सेवा चूका पकरि जुलाहा किन्हा।" कबीर के गंभीर आध्यात्मिक अर्थान्विति को समझने में विफल ग्रंथकारों ने कबीर के इस दोहे का यह अर्थ तो आसानी से निकाल लिया कि कबीर स्वयं स्वीकार करते हैं कि वे पूर्व जन्म में ब्राह्मण थे तथा कर्मच्युत होने के कारण उन्हें जुलाहा जाति में जन्म लेना पड़ा। लेकिन वैसे महापंडितों को कबीर के इस निहितार्थ को समझने का अवकाश नहीं रहा कि मनुष्य तनधारी प्रत्येक आत्मा परमात्मा का अंश है। उसे मानव तन में इसलिए भेजा

जाता है कि वह मानवोचित कर्म को करते हुए आत्मा के धर्म के मर्म को स्मरण में रखे। उसका एकमात्र कार्य 'जस की तस धरि दीन्हीं चदरिया' की उक्ति को चरितार्थ करना है। कबीर का अभिप्राय है कि जीव माया, प्रकृति पाश में आबद्ध होकर अपने पथ से जब च्युत हो जाता है तो आत्मा को अपने शाश्वत स्वरूप को प्राप्त करने में कठिनाई होती है।

कबीर के कथन का तत्त्वार्थ तो यह है कि रामदेव अर्थात परमात्मा की सेवा, स्मरण का जो विस्मरण करता है उसे प्रकृति रूपी उलझे धागों के जंजाल में फंसना ही पड़ता है। जब तक आत्मा निर्मल चित्त होकर प्रकृति जंजाल को सुलझाकर मुक्त नहीं होती तब तक उसे मायानगरी के मेलों में भटकना पड़ता है। जैसे जुलाहा धागा को सुलझाकर कपड़ा बुनता है, ठीक उसी तरह माया आवेष्टित मनुष्य को जुलाहा कर्म करते हुए मायाजाल से मुक्त होना पड़ता है।

कबीर ने जो बातें भवपतितों की मुक्ति के लिए कही, भवपतितों ने उसे ही कबीर की परिभाषा मान लिया। यह विवेकशील कहलाने वाले मनुष्य की जन्मजात विशेषता है कि वह सत्य को असत्य तथा क्षणभंगुर को शाश्वत मानने की गलतफहमी को ही अपना अद्‌भुत ज्ञान तथा अनुसंधान मानता है। कबीर को पूर्वजन्म का ब्राह्मण तथा वर्तमान का जुलाहा माननेवालों की मान्यता के पीछे यही मंशा काम कर रही थी।

नहीं तो कबीर के इस कथन कि—

"जाति न पूछो साधु की पूछो उसका ज्ञान।
मोल करो तलवार का पड़ा रहने दो म्यान॥"

में ज्ञान के ज्ञानवीरों को विश्वास करने में क्या कठिनाई थी? कबीर का यह दोहा मात्र कबीर के मर्म को ही नहीं, बल्कि उनके दर्द को भी व्यक्त करता है। कबीर जातिवाद, वंशवाद, वर्णवाद, लिंगवाद, गोत्रवाद, मूलवाद, कुलवाद, भेदवाद तथा पृथकतावाद की पीड़ा से इतने पीड़ित थे कि उन्हें ज्ञानांधों को समझाने के लिए ऐसा कहना पड़ा। लेकिन पाखंड के पंडितों को इस शाश्वत सत्य से मतलब कहां था! उन्हें या तो कबीर को ब्राह्मण साबित करने की बेचैनी थी अथवा जुलाहा। क्यों? ब्राह्मण सिद्ध हुए तो सब कुछ स्वीकार्य और जुलाहा या और कुछ तो सर्वथा इनकार।...

कबीर प्रथमतः आदमी होने के सबूत को सशक्त पक्षधरता से प्रस्तुत करने वाले प्रचंड पुरुषार्थ के पुरुष हैं और आदमी को मात्र आदमी रूप में प्रतिष्ठा के आग्रही भी। बार-बार और हर बार कबीर कुरीतियों को देखकर यह जान चुके हैं कि सारे भेद-भाव (सामाजिक अथवा धार्मिक) का मूल कारण आदमी-आदमी के बीच जाति, वंश, गोत्र, पंथ, धर्म, वर्ग, वर्ण के नाम पर खींची गई काल्पनिक दीवार ही है। कुछ भी और किसी तरह कहने का अर्थ विभाजित मानव समूह धर्म और जाति के आधार पर ही ग्रहण करता है। यही कारण है कि तत्त्व तथा सत्य को छोड़कर शेष मिथ्याडंबर के पीछे यह समूह गोलबंद हो जाता है और सत्य तथा सर्वग्राह्य की उपेक्षा करता रहता है। इसलिए प्रथम आवश्यकता आदमी को आदमी रूप में स्वीकृति प्रदान कराना है। इसके लिए कबीर को कठोर से कठोर शब्दों, दोहों, रमैनियों एवं साखियों का प्रयोग करना पड़ा। ऐसा नहीं कि कबीर अपने कथन की कठोरता से अनभिज्ञ हैं। वास्तविकता यह है कि युग-युग से मानव मन में भ्रांतियों के जमे कठोर मैल को अन्य किसी भी भांति दूर करना संभव ही नहीं है। इसीलिए कबीर को बाध्यतः कठोर वचनों का प्रयोग करना पड़ा तथा अपनी भाषा को व्याकरण एवं रचना के अनुरूप नहीं, जन भावना के अनुरूप स्वरूप प्रदान करने को विवश होना पड़ा। ताकि आदमी आदमी के आविर्भाव के उद्देश्य को समझकर आदमी मात्र को स्वीकृति प्रदान करे।

क्या कबीर के इस कथन के आधार पर भी यह सिद्ध नहीं होता कि वे आद्यांत आदमी को आदमी मानने-मनवाने मात्र के लिए व्याकुल-व्यथित थे? फिर वही प्रश्न उठ खड़ा होता है कि कबीर को क्या आदमी नहीं माना गया? सच से साक्षात्कार करने का साहस हो, तो सच तो यही है कि आदमी आदमी को आदमी मानने

के लिए तैयार नहीं होता है। केवल आदमी आदमी को आदमी तथा अपना-सा मान ले तो सारी समस्याओं का समाधान पलक झपकते हो जाएगा। आदमी तो आदमी को जाति, गोत्र, लिंग, देशी-परदेशी, ऊंच-नीच, पृश्य-अस्पृश्य, ज्ञानी-अज्ञानी पहले मानता है। आदमी तो आदमी को आदमी बिरले और विरल परिस्थिति में ही मानता है।

इसलिए कबीर की बेचैनी आदमी को केवल आदमी मनवाने की थी। उनका संपूर्ण दर्शन इसी सत्य की धुरी पर टिका हुआ है। कबीर का अध्यात्म भी इसलिए इंसानियत की भूमि में जन्म लेता है। मतलब कबीर मूलतः मानवतावादी हैं। उनका धर्म, दर्शन, कर्म तथा ज्ञान सब कुछ आदमी और इंसान के आवर्त में आवृत है। सचमुच बेमिसाल हैं कबीर, जो ब्रह्मा, विष्णु, महेश से लेकर राम-कृष्ण तक को आदमी से अधिक या कम मानने की मानसिकता में नहीं जीते। क्या इसके बाद भी जो कबीर को आदमी के पहले ब्राह्मण या जुलाहा मानते हैं, उनसे आप इत्तेफाक रखते हैं?

कबीर का आदमीवाद या मानवता का दर्शन है— आत्मज्ञान प्राप्त करना। आत्मज्ञान प्राप्त करने तथा अपने जैसा ही दूसरों को मान लेने के बाद कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता है। आत्मज्ञान के अनंतर मनुष्य का परम कर्तव्य समझा जाता है, उस ब्रह्म का साक्षात्कार करना जो समस्त जगत का हेतु, कारण या कर्ता है। कबीर इसीलिए सबसे पहले आदमी को आदमी कहलवाने-मनवाने के लिए व्यग्र थे।...

कबीर के अन्वेषण का सारांश है कि 'मानव की शाश्वत सुख की लालसा उसके अमृतत्व में ही सन्निहित रहती है। मानव के सुख का लक्ष्य या उद्देश्य शारीरिक सुख या भौतिक संपन्नता की प्राप्ति ही नहीं होती वरन् इसके अतिरिक्त कुछ और है जो मानव को अपनी ओर आकर्षित करने की अद्‌भुत क्षमता रखता है। वह कुछ है सत्य (जिसका अंत नहीं होता)। भौतिक सुख-समृद्धि से आदमी का चित्त आज न कल उचटता ही है, उसे उचटना ही है। भला आंसू से प्यास बुझती तो पानी का निर्माण ही क्यों होता? इसलिए शाश्वत का स्रोत पाना आत्मा की एकमात्र आवश्यकता है। इसलिए सत्यं, शिवं एवं सुंदरम् के सान्निध्य और नैकट्य में रहकर मानव का मन कभी विकृत नहीं होता है। वास्तव में मानव जीवन का लक्ष्य या उद्देश्य ही है चिर सत्य को प्राप्त करना। आदमी की आत्मा की उन्नति तभी हो सकती है, जब वह समस्त जीवों को समभाव से देखेगा। यदि ऐसा न होता तो कहने वाला ऐसा क्यों कहता—"आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यन्ति सः पंडितः।"

कबीर का कथन कठोर तथा कर्कश इसलिए लगता है कि वे जो करते हैं, वही कहते हैं। जबकि विवेकशील सामाजिक प्राणी मनुष्य का चरित्र ही हाथी दांत जैसा है। ऐसे चरित्रों को कबीर का यह कथन कैसे पचेगा—

संतो पांड़े निपुण कसाई।
बकरा बधि भैंसा पर धावे, दिल में दर्द न आई।
करि असनान तिलक दे बैठे, विधि से देवि पुजाई।
आतम राम पलक में विनशे, रुधिर की नदी बहाई।
अति पुनीत ऊंचे कुल कहिए, सभा माहिं अधिकाई।
इनते दिक्षा सब कोई मांगे, हंसि आवे मोहिं भाई।
पाप कटन का कथा सुनावें, कर्म करावें नींचा।
बूड़त दोउ परस्पर देखा, गए हाल चम छींचा।
गाय बधे तेहि तुरूक कहिए, इनते वे कस छोटे।
कहैं कबीर सुनहु हो संतो, कलि मंह ब्राह्मण खोटे।

यहां भी कबीर केवल आदमी होने की आवश्यकता पर बल देते हैं। पांडे, ब्राह्मण, मुल्ला-मौलवी, जादू-टोना, बलि, अर्पण, तर्पण सब की निरर्थकता को प्रतिपादित करते हैं। जाति व्यवस्था एवं वर्ण श्रेष्ठता की बखिया उधेड़ते हैं। क्या ऐसा कबीर किसी प्रतिक्रिया के वशीभूत होकर करते हैं या विद्रोह भाव से? नहीं, कबीर यह सबकुछ केवल आदमी को आदमी मानने-मनवाने के लिए करते हैं। क्योंकि कबीर ने अपनी प्रयोगशाला में भांति-भांति से प्रयोग कर लेने के बाद एक ही निष्कर्ष प्राप्त किया कि समग्र चेतना तथा संवेदना का समुच्चय यह प्रतिपादित करता है कि आदमी-आदमी में

कोई भेद है ही नहीं। जात और नाम, पंथ और प्रथा बांटने-काटने के औजार हैं, जोड़ने तथा आपस में मिलाने के सोपान नहीं।

कबीर ने अस्पष्ट ढंग से एक बहुत ही स्पष्ट बात यह कही कि समाज में केवल धार्मिक ही नहीं, आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक विभेद का मूल कारण आदमी के द्वारा ही दूसरे आदमियों को आदमी नहीं मानना है। यदि आदमी आदमी को आदमी मानता तो खाली पेट के बदले रोटी के लिए अनाज का अनावश्यक संग्रह नहीं करता, धन को निर्धनों के कल्याण पर खर्च न करके खजाने की शोभा नहीं बढ़ाता, धरती को मानव निवास के योग्य रहने देने के बदले उसे धर्मसंकट एवं प्राणसंकट का अखाड़ा नहीं बनाता, राजनीति के नाम पर राजा-प्रजा में आकाशी-पाताली विभेद कायम नहीं करता और कोई आदमी ही किसी आदमी की चमड़ी का पनही बनाने के लिए पागल नहीं होता। कबीर का दर्शन तथा अध्यात्म मात्र दिखावे का दर्पण या ज्ञान का अहंकार नहीं; बल्कि यथार्थ का आईना है। कबीर ने केवल ईश्वर और अल्लाह को एक नहीं कहा; बल्कि इसके पहले पांडे तथा सूद को भी, गोरा तथा काला को भी और देशी तथा परदेशी सबको सबसे पहले और सबसे अंत में केवल आदमी कहा। कबीर के दर्शन तथा अध्यात्म का ही नहीं, जीवन उद्देश्य का भी सारतत्व केवल यही है कि आदमी=आदमी=आदमी=शेष शून्य। लेकिन तब से लेकर अब तक ऐसे ज्ञानवीरों की कमी कहां है जो कबीर को केवल बाभन या जुलाहा सिद्ध करने में ही अपनी-अपनी काया को जर्जर करते रहे हैं। इसलिए यदि कबीर की बेचैनी केवल आदमी को आदमी सिद्ध करने के लिए है तो वह गलत कैसे है?

आदमी को केवल आदमी मानने से लाभ क्या-क्या है? आदमी को आदमी मानने से लिंग, गोत्र, वर्ण, वर्ग, जाति, पांति, गोरा-काला, उच्च-निम्न, पृश्य-अस्पृश्य, सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित, संस्कृत-असंस्कृत के आधार पर विभेद करने की बेचैनी समाप्त हो सकती है। चेतना, संवेदना, सरोकार, सहकार, सहअस्तित्व का सपना साकार हो सकता है। अपना-पराया का भेद मिट सकता है। अपने-सा सबको मानो-जानो का नीतिवाक्य मूर्तिमान हो सकता है। निराधार विभेद की भट्ठी में जलते-दहकते रहने की ईर्ष्या-ज्वाला से मुक्ति मिल सकती है। द्वेष के दावानल में अहर्निश जलते रहने से मुक्ति मिल सकती है। प्रत्येक आदमी आत्मवत दिखने लग सकता है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु तथा सर्वभूतेषु आत्मवत्' लगने लग सकता है। शोषक-पोषक की ग्रंथि टूट सकती है। संघर्ष समाप्त हो सकता है। अपनत्व की श्रीवृद्धि हो सकती है। अहंकार का तिरोधान हो सकता है। दुश्मनी मिट सकती है। मित्रता कायम हो सकती है। जड़ता टूट सकती है। जंगमता को पर लग सकते हैं। कलह का अंत हो सकता है। प्रेम का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। घृणा का घर धराशायी हो सकता है। युद्ध का अंत हो सकता है। मंदिर-मस्जिद का विवाद सुलट सकता है। सुख का जीवन मिल सकता है। वैर का अंत हो सकता है। जीवन निर्वैर हो सकता है।

इतना ही नहीं, आदमी ईश्वर का सर्वश्रेष्ठ सृजन कैसे है, सर्वोत्कृष्ट राजकुमार कैसे है? इसकी उपादेयता सिद्ध हो सकती है। मानव जीवन का उद्देश्य तथा अभीष्ट प्राप्त हो सकता है। अपराध का अंत हो सकता है। अनाथ सनाथ हो सकता है। नास्तिक स्वमेव आस्तिक दिखने लग सकता है। अल्लाह और ईश्वर एक दिखने लग सकता है। आदमी आदमी से निर्भय रहने लग सकता है। घर में ताले लगना बंद हो सकता है। जेल, पुलिस, शासन, प्रशासन की आवश्यकता समाप्त हो सकती है। आतंक का अंत हो सकता है। निःशस्त्रीकरण का युग आ सकता है। तोप, तलवार, बंदूक, बम का अस्तित्व समाप्त हो सकता है। अनावश्यक संरक्षण की आवश्यकता का एहसास खत्म हो सकता है। तनाव मिट सकता है। तिरस्कारभाव तिरोहित हो सकता है। बिना प्रयास के, संसार जो नरक का नगर दिखता है स्वर्ग का साम्राज्य दिखने लग सकता है और आदमी का

जो अंतिम अभीष्ट आनंद को प्राप्त करना है, वह संभव हो सकता है।

और यदि यह कहा जाए कि आदमी को आदमी मान लेने मात्र से आदमी अमर हो जाएगा, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कैसे? स्थूल काया को त्यागने के बाद वही व्यक्तित्व स्मरण में रह जाता है जो निर्वैर मरता है। वैर के वशीभूत होकर जो मरता है, उसे मरते ही सभी भूल ही नहीं जाते; बल्कि भुलने का हरसंभव यतन भी करते हैं। लेकिन जो आजीवन आदमी के उत्थान, विकास तथा कल्याण के लिए निःस्वार्थ भाव से काम करते हैं, वे मरने के बाद अमर हो जाते हैं। क्यों? क्योंकि निर्वैरता उनकी पूंजी रही होती है। और निर्वैरता तभी संभव है जब आदमी को केवल आदमी मानने की जीवनचर्या विकसित हो जाए।

वस्तुतः आदमी को आदमी मान लेने से केवल लाभ ही लाभ है। आदमी लाभ ही तो चाहता है। फिर घाटे का सौदा करने के लिए पागल क्यों होता रहता है? आदमी को आदमी मान लेने से वैरानुबंध समाप्त हो जाता है। सुख का उद्यान महमह करने लगता है। संतोष की सरिता कलकल-छलछल करने लगती है। अपनत्व का अयन चमकने लगता है। निजत्व की नदी निनादित होने लगती है। द्वेष की दुर्गंध दूर हो जाती है। प्रेम का प्रकाश प्रकट हो जाता है। संगठन का सरगम सुनाई पड़ने लगता है। जाति का जंतर-मंतर जी का जंजाल लगने लगता है। वर्ग के बर्रे से पीछा छूट जाता है। लिंग के लफड़ों से मुक्ति मिल जाती है। गोत्र की गलाघोंटू बीमारी से पिंड छूट जाता है। रंग के रोग से आरोग्य प्राप्त हो जाता है। वर्गवाद के विध्वंसक कुप्रभाव से व्यक्ति बच जाता है। नस्लवाद के नजले से निजात पा जाता है। आत्मजयी हो जाता है। विश्व विजयी हो जाता है।

आदमी आनंद चाहता है। आनंद का भावार्थ है वह सुख जिसका अंत न हो। यह चरम उपलब्धि मात्र आदमी को आदमी मानने से ही संभव है। आनंद प्राप्त करने का दूसरा कोई मार्ग या उपाय नहीं है। तुलसी ने रामचरितमानस में एक जगह लिखा है—"निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥" यह कैसे संभव होता है! यह तभी संभव होता है जब आदमी आदमी को केवल आदमी मान लेता है। जब आदमी शेष आदमी को आदमी मान लेता है उसके लिए जाति, वंश, गोत्र, लिंग, वर्ण, वर्ग का महत्त्व महत्त्वहीन हो जाता है। सबका मान उसके लिए बराबर हो जाता है। फिर वह द्वेष किससे करेगा? इसलिए वह निर्वैर या निर्मल हो जाता है। और भगवान को केवल निर्मल मन वाला व्यक्ति पसंद है। है न भगवान को प्राप्त करने या होने का यह अचूक उपाय! इसलिए कबीर ने आदमी को केवल आदमी मानने की वकालत की।

अब कबीर के केवल आदमी स्वरूप के निहितार्थों, भावार्थों तथा तत्त्वार्थों के अध्ययन के लिए उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अंतर्निहित विशेषताओं का विश्लेषण इसलिए आवश्यक है कि कबीर के स्वास्तिक कबीरत्व को जाने बिना वास्तविक कबीर को जानना असंभव है।

('न बांटिए कबीर को' से साभार)

सुभाषित

- **इंसान के जिस्म का सबसे खूबसूरत अंग 'दिल' है और अगर वह ही साफ न हो तो चमकता 'चेहरा' भी किसी काम नहीं है।**
- **विचारों पर ध्यान देंगे तो शब्द बन जायेंगे। शब्दों पर ध्यान देंगे तो आदत बन जायेंगे। आदतों पर ध्यान देंगे तो चरित्र बन जायेंगे और चरित्र पर ध्यान देंगे तो वह सुन्दर नियति और जीवन का निर्माण करेगा।**
- **एक खूबसूरत दिल हजार खूबसूरत चेहरों से ज्यादा बेहतर होता है, इसलिए जिन्दगी में हमेशा ऐसे लोगों का साथ करो जिनका दिल, चेहरे से ज्यादा खूबसूरत हो।**

–अज्ञात

कबीर का सर्जनात्मक दुःखबोध

लेखक—श्री अरविन्द त्रिपाठी

परमगुरु/दो तो ऐसी विनम्रता दो/कि अंतहीन सहानुभूति की वाणी बोल सकूँ/और यह अंतहीन सहानुभूति/पाखण्ड न लगे।

दो तो ऐसा कलेजा दो/कि अपमान, महत्वाकांक्षा और भूख/की गांठों को मरोड़े हुए/ उन लोगों का माथा सहला सकूँ/और इसका डर न लगे/फिर कोई हाथ ही काट खायेगा।

दो तो ऐसी निरीहता दो/कि इस दहाड़ते आतंक के बीच/फटकार कर सच बोल सकूँ।

और इसकी चिंता न हो/कि इस बहुमुखी युद्ध में/मेरे सच का इस्तेमाल/कौन अपने पक्ष में करेगा।

यह भी न दो/तो इतना ही दो/कि बिना मरे चुप रह सकूँ

(प्रार्थना : गुरु कबीरदास के लिए—
विजय देवनारायण साही)

स्वर्गीय विजय देवनारायण साही ने अपने साखी काव्य संग्रह में यह प्रार्थना कबीर से की है और कबीर को अपना काव्य गुरु माना है। साही इस प्रार्थना के जरिये अपने समय के दहाड़ते आंतक के विरुद्ध कबीर से शक्ति की याचना कर रहे हैं ताकि उनका कवि निर्भय होकर फटकार कर सच बोलने का साहस कर सके। ज़ाहिर है साही ने कबीर से यह प्रार्थना बीसवीं शताब्दी के समय में की है। भय और आतंक के साये में डूबी बीसवीं सदी की दुनिया में, जिसमें कवि निर्भय होकर सच कहने का साहस बटोर रहा है। और अंत में यह भी बयां कर रहा है कि गुरु यदि मेरे लिए ऐसा न कर सको तो इतना ज़रूर करना कि बिना मरे चुप रह सकूँ।

साही की इस प्रार्थना को पढ़ते हुए सहसा मैं रुक गया और सोचने लगा क्या आज से छह सौ वर्ष पूर्व अपने समय में कबीर की आवाज़ ईश्वर से यही प्रार्थना नहीं करती कि मुझे मुक्ति दो। यह मुक्ति कबीर के लिए अकेली नहीं थी। उसके सामने आध्यात्मिक, भौतिक सामाजिक, सांस्कृतिक सवालों के उलझन भरे रूप थे जिन्हें वे तोड़कर सच्चाई जानना चाहते थे। अगर कबीर की कविता और कबीर के जीवन के सारांश की व्याख्या की जाये तो पता चलता है उनका समूचा प्रयत्न सच को जानने की कोशिश है। इस सच को जानने के लिए वे गुरु की तलाश में रहे।...क्योंकि कबीर की दृष्टि में ईश्वर से कम मूल्यवान गुरु नहीं हैं। वे गुरु से ज्ञान चाहते थे। क्योंकि बिना ज्ञान के न तो ईश्वर मिल सकता और न मुक्ति का रास्ता। यह आकस्मिक नहीं है कि कबीर की भक्ति-साधना में सबसे ज्यादा जोर ज्ञान पर दिया गया है। जबकि भक्तिकाल के अन्य कवियों में ईश्वर की शरण में आगत हो जाने का भाव ज्यादा है। अगर मैं कबीर के भक्ति-काव्य को ईश्वर के आतंक से मुक्ति का काव्य कहूं तो अत्युक्ति न होगी। क्योंकि समूचा भक्तिकाल ईश्वर के आतंक से घिरा हुआ है। कबीर का काव्य-प्रयत्न सबसे पहले भक्ति-काल में ईश्वर के आतंक को मुक्त करता है। कबीर के राम वह सब करने की छूट भक्त कबीर से नहीं ले सकते थे जितनी तुलसी के राम भक्त तुलसीदास से। भक्तिकाल के दौर में कबीर का प्रस्थान सगुणोपासना से निर्गुणोपासना की ओर इसीलिए हुआ क्योंकि सगुणोपासना में हमेशा यह गुंजाइश बनी रही कि ईश्वर का रूप साकार है और जो चीज साकार और विराट है उसका सहज ही विराट आतंक होगा। इसीलिए कबीर के बरअक्स तुलसी, सूर दोनों में ईश्वर के साकार रूप का हमेशा आतंक छाया मिलता है। जबकि कबीर ने अपने भक्तिकाव्य में हमेशा ईश्वर के आतंक से अपने भक्त को दूर रखा। सबसे पहले उन्होंने ईश्वर का निराकार चेहरा चूना। ताकि हर भक्त को इस बात की छूट हो कि इससे ईश्वर का चेहरा उसके मनोरूप हो। ईश्वर को मनोरूप चुनने की यह स्वतंत्रता भक्तिकाल में एक भक्त कवि के लिए सबसे बड़ा 'स्पेस' है। कबीर भक्तिकाल की बंद दुनिया में एक औघड़ साधक जान पड़ते हैं। उनकी भक्ति-साधना में

एक भक्त की विद्रोही भावना छिपी दिखायी पड़ती है। कबीर की यह विद्रोही भावना भक्तिकाल के दौर में भक्ति कविता और भक्ति की दुनिया में एक दूसरी परम्परा की खोज लगती है। ईश्वर के आतंक से घिरी भक्ति कविता के बरअक्स ईश्वर को सहज भाव से स्वीकार करने की ज्ञानमार्गी शाखा। भक्ति-मार्ग की इस शाखा में ईश्वर सखा, मित्र, प्रेमी के रूप में सामने आते हैं :

नैनों की कर कोठरी पुतरी पलंग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै पिय को लिया रिझाय॥

कबीर की भक्ति साधना में... आराध्य और आराधक की भूमिका समान होती है।...कबीर अपनी भक्ति-साधना में ईश्वर और भक्त को समान भूमि पर खड़ा करते हैं। कई बार भक्त ईश्वर से जिरह भी करता है। वह और भक्त कवियों की तरह पैरों में बिछ नहीं जाता।...

कबीर के भक्ति पदों को स्मरण करें तो उसमें भक्त की अपने आराध्य के प्रति निष्ठा, समर्पण, और एकाग्रता सम्पूर्ण रूप से उपस्थित है पर वह दीनता, और गलदश्रु भावुकता नहीं टपकती जो ईश्वर के सामने मनुष्य को हमेशा दीन, हीन और अधम कोटि का साबित करती है। कबीर की ख़ासियत यह भी है कि वे अपनी भक्ति में ईश्वर को खासे तर्क के साथ स्वीकार करते हैं। यद्यपि कहा जाता है कि प्रेम और भक्ति में तर्क की गुंजाइश नहीं पर कबीर की भक्ति साधना ने ईश्वर के बारे में तर्क की पर्याप्त गुंजाइश पैदा की। भक्ति में तर्क की यह गुंजाइश कबीर को एक ओर सच्चा भक्त बनाती है तो दूसरी तरफ़ उन्हें हजार वर्षों के सांस्कृतिक इतिहास में पहला आधुनिक मनुष्य बनाती है। इसीलिए कबीर पूरे भक्तिकाल में अध्यात्म और जीवन का नया शास्त्र गढ़ते नज़र आते हैं। सगुणोपासना के तमाम बाह्याचारों, वाग्जालों को निष्कवच करते कबीर ईश्वर के अस्तित्व को ज्ञान के टार्च की रोशनी में देखने के हिमायती हैं, उनके पास निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार करने के लिए पर्याप्त तर्क है। यह तर्क उन्होंने ज्ञान के विवेक से अर्जित किया था।

दुर्भाग्यवश भक्तिकाल का समूचा शास्त्र तुलसी और सूर के केन्द्र में रहा है। जिसमें ईश्वर का आतंक इस कदर व्याप्त है कि कोई भक्त ईश्वर से जिरह करने की हिम्मत नहीं कर सकता। अगर कबीर को केन्द्र में रखकर भक्तिकाल की कविता का मूल्यांकन किया जाये तो भक्तिकाल का नक्शा बदल जायेगा। क्योंकि अनिवार्य रूप में कबीर की कविता ईश्वर के आतंक के जज्बे को ख़त्म करती है। और मनुष्य के लिए ईश्वर के सामने मानवीय गरिमा को स्थापित करती है। मुझे कबीर का यह आध्यात्मिक अवदान भक्तिकाल की समूची कविता में विलक्षण लगता है। कबीर का यह अवदान किसी भी काल के मनुष्य के लिए जो सचमुच ईश्वर से प्रेम करना चाहता है, अनिवार्य पाथेय बन सकता है।

कबीर की भक्ति में एक जो दूसरी चीज़ सबसे ज्यादा आकृष्ट करती है वह है उनकी भक्ति-साधना में समाज के सभी वर्गों का समावेश। उनके भक्ति-मार्ग में समाज के आख़िरी आदमी को सबसे पहले जगह मिलती है। शायद भक्तिकाल में वे ऐसे पहले भक्त कवि हैं जिन्होंने श्रम जीवन को काव्य और अध्यात्म दोनों से जोड़ा। कबीर की परम्परा का भक्त अपना साधारण जीवन जीते हुए भी भक्ति-साधना में शरीक हो सकता है। ऐसा नहीं कि जो ईश्वर का भक्त हो गया उसे घर-परिवार छोड़कर रात-दिन सिर्फ माला ही जपनी है। कबीर की भक्ति-साधना भौतिक कर्म से रहित नहीं, बल्कि सहित है। जाति-पांति के भेद-भाव को पूरी तौर पर अस्वीकार कर चुकने के बावजूद कबीर कभी भुला न सके कि वे पेशे से जुलाहा हैं। बराबर वे श्रमशक्ति से जुड़े रहे। उनके आध्यात्मिक पदों में दर्जनों ऐसे रूपक हैं जिनमें करघे के विविध प्रयोग दिखायी देते हैं। ऐसा लगता है कि वे राम नाम भी किसी जुलाहे की तरह ही बुनते हैं। अध्यात्म को कर्म से निरन्तर जोड़े रहने की यह कोशिश भी कबीर की विलक्षणता है। मैं नहीं जानता कि कबीर के अलावा तुलसीदास जैसे भक्तिकाल कवियों के जीविकोपार्जन का ज़रिया क्या था।

कबीर में तीसरी बात जो ग़ौर करने की है वह है उनका दुखबोध। यह साधारण जीवन की कोख से पैदा होकर (जिसके शिकार स्वयं कबीर थे) सार्वजनिक दुख में बदल जाता है। यह दुखबोध उनके जीवन और कविता में इतना तीक्ष्ण, हृदयद्रावक और युगान्तकारी है कि वह कबीर को भी बदल देता है। यद्यपि भक्तिकाल के लगभग सभी कवियों में यह दुखबोध प्रबल है पर कबीर का दुखबोध निजी या आध्यात्मिक नहीं है, बल्कि वह पूर्णतः सामाजिक और भौतिक है। नामवर सिंह ने कबीर के दुख की मीमांसा करते हुए बिलकुल ठीक कहा है, ''यह सामाजिक दुख इतना उत्कट है कि कबीर जैसे संवदेनशील संत को आध्यात्मिक क्षणों में भी उद्वेलित करता है। एक तरह से यह भक्तिभाव के क्षेत्र में सामाजिक यथार्थ का हस्तक्षेप है। तात्पर्य यह है कि कबीर के दुख का एक निश्चित सामाजिक आधार है। शायद इसीलिए वे एक कवि हैं सिर्फ़ संत नहीं। खंजड़ी लेकर घूमने वाले संत तो और भी हैं, ढेरों, किन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि उदास फिरने वाले कबीर का यह दुख बहुत विस्फोटक और विध्वंसक है। वस्तुतः यह आत्मा की धधकती हुई आग है जिसमें इस भ्रष्ट संसार को ख़ाक कर देने की अकूत ताक़त है। कबीर का 'सबद' आग है और यह दुख 'विद्रोह'।

जाहिर है कबीर का यह दुखबोध उनकी आत्मा को विद्रोही और निर्भय बनाती है। जिसके कारण वे हमारे वाङमय में विद्रोही परम्परा के सूत्रधार बन सके। उनकी कविता में दुख की दुनिया ठसी हुई है जो अक्सर सामाजिक विद्रोह और क्रांति में बदल जाती है। मेरा ख्याल है कि भक्तिकाल की कविता की सामाजिक व्याख्या बिना कबीर काव्य के संभव नहीं। जो लोग यह मानते आ रहे हैं कि भक्तिकाल आध्यात्मिक उत्थान का काल है उन्हें कबीर के काव्य के सामाजिक सरोकारों को खोजना होगा। वे हमारी परम्परा में सामाजिक हस्तक्षेप के शायद सबसे बड़े कवि इस मामले में ज्यादा हैं क्योंकि उन्होंने भक्तिकाल की आध्यात्मिक सच्चाइयों और सामाजिक दुखों को साहस के साथ निर्भय होकर वाणी दी। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शायद इसीलिए कबीर को वाणी का डिक्टेटर कहा। वाणी का डिक्टेटर वही हो सकता है जो सच का आग्रही और सच कहने का साहस रखता हो। कबीर ने आध्यात्मिक दुनिया में जगत की माया को अगर दुख का कारण बताया तो सामाजिक जीवन में दुख का कारण ग़ैर बराबरी, ऊंच-नीच, जात-पांत, छूआछूत, आर्थिक असमानता में ढूंढने की कोशिश की। समाज में जो शक्तियां इन्हें मजबूत करने की कोशिश में लगी थीं उन्हें कबीर ने कड़ी फटकार लगायी। उनकी यह फटकार इतनी सीधी और बेधक है कि लोग तिलमिला जाते थे। इसीलिए कबीर ने अपने समय में सबसे ज्यादा शत्रु पैदा किये हैं। पर वे अपने समय में डरे नहीं। कवि कबीर की यही निर्भय अनहद गूंजती आवाज़ आज भी हमारा पीछा करती है और कबीर से हमें बराबर जोड़ती है। उनकी परम्परा कहती है कि आज सामाजिक कर्म की कविता लिखना आसान नहीं है। कवि वही हो सकता है जो सत्ता और मुकुट-थैली और गद्दी को ठेंगे पर रखे। जिसके प्रलोभन का ख़तरा आज लेखक समाज के सामने सबसे ज्यादा है।...

कबीर ने आज से छह सौ वर्ष पहले समाज में साम्प्रदायिकता के जिस ख़तरे को भारतीय समाज का नासूर कहा था और उसके खिलाफ़ कविता और जीवन दोनों मोर्चों पर लड़ाई लड़ी थी, क्या वह लड़ाई फिर से सामने नहीं है?

मैंने कबीर के जिस सार्वजनिक दुख का इज़हार किया है वह निश्चित तौर पर इधर के समाज में हरा हुआ है। साम्प्रदायिकता के क़िले मजबूत हुए हैं। समाज में साम्प्रदायिक सौहार्द्र की कड़ियां जगह-जगह से टूट गयी हैं, हर जगह भोग और लिप्सा की उद्दाम कामनाएं लहरा रही हैं, उपभोक्तावाद चरम पर है। आपके दुख को भी अब बाज़ार में वस्तु बनाकर बेचने की कोशिश की जा रही है। ऐसे में एक कवि को, एक परिवर्तन कामी व्यक्ति को कबीर की बेहद ज़रूरत है। चूंकि कबीर अब सशरीर नहीं हैं इसलिए उनका काव्य ही हमारा पाथेय है। कबीर की कविता से आज के समाज का क्या रिश्ता बन सकता है, इसको एक बार फिर नये

सिरे से नये आलोक में जांचने-परखने की ज़रूरत है। तभी कबीर को स्मरण करने का कोई सार्थक अर्थ हो सकता है।

आख़िरी बात, जो लोग कबीर को कवि नहीं मानते उन्हें संत या समाज सुधारक मानते हैं और उनके काव्य को उनके समाज-सुधार का 'बाइप्रोडक्ट' मानते हैं उनसे जिरह की जा सकती है कि कविता को जांचने-परखने का आपके पास पैमाना क्या है? यद्यपि कबीर ने अपने को कहीं भी कवि नहीं कहा, हमेशा संत कहा, पर अपने को कवि तो तुलसीदास, सूरदास ने भी नहीं माना। सिर्फ़ जायसी ने अपने को कवि कहा। कबीर ने अपने समय की कविता में सारे प्रतिमानों को तोड़ दिया था, उनकी कविता में किसी विशाल शिलाखण्ड के टूटने की आवाज़ थी जो प्रचलित कविता की आवाज़ नहीं है। संस्कृत काव्य परम्परा और काव्यशास्त्र के प्रचलित मानदण्डों का निषेध है। उनकी कविता के ज़रिये पहली बार कथ्य दो टूक और बेलाग हुआ। भाषा की मारक शक्ति का अहसास हुआ। बल्कि कहना चाहिए कि कबीर ने काव्य भाषा के पूरे विन्यास को बदल दिया। उनकी भाषा को पंचमेल खिचड़ी कहकर अध्यापकों ने मज़ाक उड़ाया और उन्हें गंभीर कवि मानने से परहेज़ किया। शुक्लजी तक ने कबीर के कवि को संदेह की आंखों से देखा। लेकिन हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की काव्यशक्ति को पहचाना और कहा कि कबीर जैसा कवि हजार-हजार वर्षों में कोई एक पैदा होता है। शायद इसीलिए कबीर ने अपने समय, समाज और संस्कृति की दुनिया में तथाकथित शिष्ट और पवित्र जीवन को चुनौती दी। इतने व्यापक स्तर पर चुनौती किसी भी कवि ने नहीं दी। इसलिए कबीर इतने बड़े युगान्तरकारी बने। यह काम युगान्तर कविता में सच्चे लोक की ईमानदार छवि की स्थापना का है। जिसको कबीर ने उन्हीं की ज़ुबान में कहने की हिम्मत की।

यह आकस्मिक नहीं है कि उनकी कविता जितनी लिखित रूप में मौजूद हैं उससे ज्यादा कहीं वाचिक परम्परा में जीवित हैं। हिन्दी कविता के इतिहास में भक्तिकाल के अधिकांश कवि वाचिकता की परम्परा के वाहक बने। कबीर इन वाहकों में तुलसी की तरह जन-जन के कंठहार हैं। आज की कविता में वाचिक परम्परा का जितना ह्रास और निषेध दीखता है उससे लगता है कि हमने कबीर की राह छोड़ दी है या उन्हें भूल चुके हैं जबकि कबीर ने ज़िद की तरह आजीवन अपनी राह नहीं छोड़ी, काव्य और जीवन में फांक नहीं की, जो जिया, किया वही लिखा।

कभी-कभी मैं सोचता हूं कि कबीर का जो निजी दुख है वह सार्वजनिक स्तर पर भी हमें क्यों बांधता है। जो कबीर जीवन भर काशी को कर्मस्थली बनाये रहे उन्होंने अंत में मरने के लिए गोरखपुर में मगहर के पास राप्ती नदी के तट पर जगह चुनी। मगहर आज भी एक उपेक्षित अज्ञात जगह है। कबीर के नाम जो कताई मिल है, होश संभालने के साथ आज तक बंद देख रहा हूं। सोचता हूं कबीर ने मगहर में अपनी मृत्यु के लिए जगह क्यों चुनी? वे काशी में मर सकते थे लेकिन नहीं, उन्होंने काशी के मोक्ष मिथ को तोड़ने के लिए यह ज़िद की। इस ज़िद के पीछे उनका निजी दुख और अकेलापन दोनों झलकता है। जिसके पीछे विद्रोह है। क्या इस कबीर को समझने के लिए जितना हमें क्रांतिकारी होना चाहिए उससे कहीं ज्यादा मानवीय दुख का सहभागी नहीं होना चाहिए? शायद तभी हम कबीर के अर्थ को ठीक-ठीक जान सकते हैं।

(साभार : कबीरदास : विविध आयाम)

- **समय, सत्ता, सम्पत्ति और शरीर सदा साथ नहीं देते, परन्तु शील, समझदारी, सद्गुण, सद्ज्ञान, संतोष तथा सच्चे सम्बन्ध सदा साथ देते हैं और सच्चा सुख भी।**
- **तालाब कुएं से सैकड़ों-हजारों गुणा बड़ा होता है, फिर भी लोग कुएं का ही पानी पीते हैं, क्योंकि कुएं में गहराई और शुद्धता होती है। इसी प्रकार धन, विद्या और पद से कोई मनुष्य बड़ा तो हो सकता है, लेकिन वह महान तभी बनता है जब उसके व्यक्तित्व में आचरण और समझदारी की गहराई और विचारों में शुद्धता-निर्मलता होती है। बड़ा नहीं बन सकते कोई बात नहीं, महान जरूर बनें।** ***-अज्ञात***

व्यवहार वीथी

गुणदृष्टि अपनायें

घर-परिवार, समाज में अनेक प्रकार के स्वभाव, गुण-कर्म, विचार, मान्यता एवं रुचि के लोगों के बीच रहते एवं काम करते हुए खीझ-शिकायत से बचकर प्रसन्नतापूर्वक जीवन व्यतीत करना सहज नहीं है। सारी सुविधाओं के होते हुए भी लोगों का मन प्रसन्न न रहकर उदास क्यों रहता है? एक साथ रहते हुए भी एक-दूसरे के प्रति प्रेम क्यों नहीं रह पाता? मरने के बाद स्वर्ग जाने के लिए दान-पुण्य, पूजा-पाठ, भजन-कीर्तन करने वाले इसी जीवन में अपने घर-परिवार को स्वर्गमय बनाकर स्वर्ग-सुख का अनुभव क्यों नहीं कर पाते? इसके अनेक कारणों में से प्रमुख कारण हैं अहंकार, अपेक्षा एवं दोषदृष्टि। इनको मिटाकर यदि लोग सरल एवं निष्काम बनकर गुण-दृष्टि अपना लें तो उन्हें अपने घर-परिवार में ही स्वर्ग-सुख का अनुभव होने लगेगा और उनका व्यावहारिक जीवन अत्यन्त सुखद तथा मधुर बन जायेगा।

लोग पूजा-पाठ करने के लिए मन्दिर जाते हैं और समझते हैं कि वहां देवी-देवता, भगवान रहते हैं किन्तु वे अपने घर को मन्दिर और घर में रहने वाले सदस्यों को देवी-देवता, भगवान-भगवती नहीं समझ पाते और उनके साथ मधुरतापूर्वक व्यवहार नहीं कर पाते तब अपने घर-परिवार में सुख एवं प्रसन्नतापूर्वक कैसे रह सकते हैं! बाहर चाहे जितने अधिक और जितने बड़े मन्दिर बना लिए जायें और उनमें पत्थर के नहीं रत्नजड़ित सोना-चांदी की बड़ी-बड़ी मूर्तियां स्थापित एवं प्रतिष्ठित कर लिये जायें उनसे जीवन परिवर्तन नहीं होने वाला है और न घर-घर में पिता-पुत्र, पति-पत्नी, सास-बहू, भाई-भाई, पड़ोसी-पड़ोसी के बीच जो कलह एवं विवाद है वह दूर होगा। इसके लिए आवश्यक है घर को मन्दिर बनाना और घर के सदस्यों को देवी-देवता मानकर उनके साथ मधुरतापूर्वक प्रेम-व्यवहार करना।

बाहर मन्दिर बनाना और उसमें किसी महापुरुष की मूर्ति-प्रतिमा स्थापित-प्रतिष्ठित करना गलत नहीं है, किन्तु बाहर मन्दिर बनाकर उसमें पूजा-अर्चना करने का फल एवं परिणाम है अपने घर, मन एवं जीवन का मन्दिर बन जाना। सबसे पहले यह समझना होगा कि पूजा का अर्थ है मन का सरल, कोमल एवं विनम्र बन जाना और सरल, कोमल एवं विनम्र मन से घर के छोटे-बड़े सभी सदस्यों के साथ प्रेम-विश्वास पूर्वक मधुर व्यवहार करने पर घर मन्दिर बन जाता है। मन में सबके प्रति हितकामना करते रहने से तथा सब समय सद् चिन्तन करते रहने से मन मन्दिर बन जाता है। तथा सारे गलत कर्मों को छोड़कर सेवा, भक्ति एवं सद्कर्म करते रहने से जीवन मन्दिर बन जाता है। मान्यता और विश्वास चाहे जो हो किन्तु हर व्यक्ति को यह अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए कि जब तक अपना घर, मन और जीवन मन्दिर नहीं बनेगा तब तक बाहर का कोई मन्दिर काम नहीं आयेगा। आदमी चाहे जितना भी पूजा-पाठ कर ले सब व्यर्थ चला जायेगा, एक दिखावा बनकर रह जायेगा।

महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि आप कितना पढ़े-लिखे हैं, कितने बड़े विद्वान, लेखक, कवि, प्रवक्ता, नेता, अफसर हैं, क्या करते और कितना कमाते हैं। महत्त्वपूर्ण है आप अपने घर-परिवार में कैसे रहते हैं उलझकर या सुलझकर, कुढ़ते हुए या मुस्कराते हुए। आपको अपना घर स्वर्ग के समान सुखद लगता है या नरक के समान दुखद। जीवन निर्वाहिक कार्यों के बाद आप ज्यादा समय घर-परिवार के सदस्यों के साथ घर में रहना चाहते हैं या घर के बाहर ही रहना चाहते हैं। यदि आपको अपना घर नरक के समान दुखद जान पड़ता है और ज्यादा समय घर से बाहर ही रहना चाहते हैं क्योंकि आपको अपने घर के सदस्य दुश्मन जान

पड़ते हैं तो आपका कुछ भी बनना बेकार है। यह तो हो सकता है कि घर के एक-दो सदस्य आपकी बात न मानते हों, आपका विरोध करते हों, किन्तु यदि आपको यह जान पड़ता है कि घर के सभी सदस्य आपका विरोध करते हैं और कोई आपकी बात सुनने या मानने को तैयार नहीं है तो गलती उनकी नहीं, आपकी है और आपको अपना स्वभाव, व्यवहार, आचरण सुधारने की आवश्यकता है। आप अपनी दृष्टि बदलें। दोषदृष्टि छोड़कर गुणदृष्टि बनायें आपको घर-परिवार के सभी सदस्य मित्रवत जान पड़ेंगे। वस्तुतः वे आपके मित्र, सहयोगी-साथी हैं ही।

सुबह उठकर बिस्तर पर बैठ जाइये और एक-एक कर घर के सभी सदस्यों को याद कीजिए और साथ ही याद कीजिए उनमें कौन-कौन-सी अच्छाइयां तथा कौन-कौन-से सद्‌गुण हैं। जितना-जितना आप उनकी अच्छाइयों एवं सद्‌गुणों को याद करते जायेंगे उतना-उतना आपके मन में उनके लिए प्रेम बढ़ता जायेगा, उनके प्रति आपका मन कोमल होता जायेगा और फिर उनके प्रति आपका व्यवहार कोमल एवं मधुर बनता जायेगा। जितना-जितना घर के सदस्यों के प्रति आपका व्यवहार कोमल एवं मधुर होता जायेगा उतना-उतना उनका व्यवहार भी आपके प्रति कोमल एवं मधुर होता चला जायेगा। फिर आपको अपना घर मन्दिर और घर के सदस्य देवी-देवता जान पड़ेंगे। फिर आपको अपना घर ही स्वर्ग के समान सुखद जान पड़ेगा।

हो सकता है आपके घर के सदस्यों में कोई दोष एवं त्रुटि हो, जैसा कि आप में भी है। आप कह सकते हैं कि मुझमें कोई दोष या त्रुटि नहीं है, तो आप यह समझें कि घर के सदस्यों के दोष, त्रुटि या गलतियों को देखते रहना, याद करते रहना और देख-देखकर तथा याद कर-कर के कुढ़ते तथा उलझते रहना और सबसे अपना व्यवहार कटु बना लेना आपकी बहुत बड़ी त्रुटि है, बहुत बड़ा दोष है। इसी दोष के कारण आप घर के सदस्यों के साथ न तो तालमेल बैठा पाते हैं और न प्रेमपूर्ण व्यवहार कर पाते हैं। इसीलिए घर के सदस्य भी आपसे दूर-दूर बने रहते हैं और वे भी आपसे प्रेमपूर्ण व्यवहार नहीं कर पाते।

जहां गुणदृष्टि होती है वहां स्वाभाविक प्रेम होता है और प्रेम होने पर दोषदृष्टि न होकर गुणदृष्टि बनी रहती है। जिसके लिए अपने मन में प्रेम होता है उसमें दोष-त्रुटि न दिखाई देकर उसके गुण-अच्छाई ही दिखाई पड़ते हैं। कहा भी गया है—"प्रेमी के भावै चाल मन जो प्रेम दिल साँचा रहै।" यदि मन में प्रिय के प्रति सच्चा प्रेम है तो उसकी हर बात, क्रिया, व्यवहार, आचरण अच्छे लगते हैं। दोष दिखते ही नहीं। निम्न उदाहरण से यह अच्छी तरह समझा जा सकता है—

शादी की पहली रात को नवविवाहित पति-पत्नी जब परस्पर मिले तो दोनों ने यह तय किया कि दोनों अपने पास एक-एक डायरी रखेंगे और रोज एक दूसरे की गलतियों को लिखते जायेंगे। साल-भर के बाद शादी की पहली वर्षगांठ को डायरी की अदला-बदली कर देखेंगे कि मुझसे क्या-क्या गलतियां हुई हैं। एक साल बीतने पर शादी की पहली वर्षगांठ को समारोह के उपरान्त दोनों जब इकट्ठे हुए तब डायरी की अदला-बदली की गयी। पति ने देखा कि पत्नी ने डायरी के प्रत्येक पृष्ठ पर उसकी अनेक गलतियां लिख रखी हैं। डायरी का कोई भी पृष्ठ खाली नहीं है जिसमें उसकी गलतियां न लिखी गयी हों। डायरी में लिखी अपनी गलतियों को पढ़कर पति मुस्कराता रहा। उधर पत्नी पति की डायरी लेकर उसके पन्ने पलटती रही कि पति ने मेरी क्या-क्या गलतियां लिख रखी है। वह देखती है कि डायरी के अन्तिम पृष्ठ को छोड़कर सभी पन्ने बिलकुल कोरे हैं, उनमें कुछ भी नहीं लिखा गया है। अन्तिम पृष्ठ में पति ने लिखा था—"प्रिये! मेरी छोटी-बड़ी अनेक गलतियों को नजरअन्दाज एवं सहन कर तुमने मुझे जो अपना प्यार दिया है और मेरे साथ सुन्दर व्यवहार किया है उसके लिए मैं तुम्हारा बहुत ही आभारी हूं। रही तुम्हारी गलतियों की

बात, तो मेरे मन में तुम्हारे लिए इतना प्यार है कि मुझे तुममें कोई गलती दिखाई नहीं पड़ी, फिर मैं तुम्हारी गलतियां लिखता कैसे।'' पति की लिखी इन बातों को पढ़कर पत्नी रोती और पश्चाताप करती हुई पति से लिपट जाती है और कहती है—मुझे क्षमा कर दो। मैं तुम्हें समझ नहीं पाई और तुम्हारी गलतियां देखने में व्यस्त रही।

क्या कारण है कि शादी के शुरुआती दौर में जो पति-पत्नी एक-दूसरे को स्वर्ग के समान सुखद जान पड़ते हैं और एक-दूसरे को देखे बिना रह नहीं पाते हैं कुछ दिनों-महीनों के बाद वे ही एक-दूसरे को नरक के समान दुखद जान पड़ते हैं और एक-दूसरे को देखना तक पसन्द नहीं करते। इसका मुख्य कारण है कि दोनों एक-दूसरे में गुण-अच्छाई न देखकर कमी, त्रुटि एवं बुराई देखने लग जाते हैं। जिससे दोनों का मन कटु-कठोर बन जाता है और परस्पर का व्यवहार कलहपूर्ण एवं दुखद बन जाता है और साथ रहना मुश्किल हो जाता है।

चाहे पति-पत्नी हों, चाहे पिता-पुत्र, सास-बहू, भाई-भाई, ननद-भावज, देवरान-जेठान, गुरु-शिष्य परस्पर साथ रहकर सुखी तभी रह सकते हैं और परस्पर का व्यवहार मधुर एवं प्रेमपूर्ण तभी बना रह सकता है जब वे एक-दूसरे के दोषों, त्रुटियों, गलतियों एवं कमियों को न देखकर और न याद कर एक-दूसरे में गुण-अच्छाई देखकर उनकी याद करते रहेंगे। गुण-दृष्टि होने पर स्वाभाविक ही सामने वाले के प्रति मन में प्रेम उत्पन्न होने लगता है और प्रेम उत्पन्न होने पर स्वाभाविक ही गुणदृष्टि हो जाती है।

हर आदमी चाहता है कि मेरे सहयोगी, साथी तथा घर के सदस्य मेरे दोषों, त्रुटियों, कमियों को न देखकर मेरे गुणों तथा अच्छाइयों को ही देखें और उनकी ही चर्चा करें, परन्तु इसमें तो किसी की स्ववशता नहीं है कि दूसरा क्या देखना पसन्द करता है। स्ववशता है तो केवल अपने पर कि हम स्वयं दूसरों के सद्गुणों, अच्छाइयों को देखें, याद करें तथा उनकी ही चर्चा करें। इसमें सबसे बड़ा लाभ स्वयं का है कि अपना मन शिकायत, क्षोभ, तनाव, कटुता से रहित सरल, कोमल, प्रसन्न बना रहेगा और दूसरों के साथ हमारा व्यवहार मधुर एवं प्रेमपूर्ण बना रहेगा जिससे वे भी प्रसन्न रहेंगे और हमसे मधुर-प्रेमपूर्ण व्यवहार पाकर वे भी अपने व्यवहार में परिवर्तन करने लगेंगे।

गुणदृष्टि और प्रेम के रास्ते में सबसे बड़े रोड़े हैं अहंकार और अपेक्षा। अहंकार का काम ही है अपने दोष तथा दूसरे के सद्गुणों को न देखना किन्तु अपने गुणों तथा दूसरे के दोषों-गलतियों को ही देखते रहना। यही तो अहंकार के जीवित रहने का प्रमुख कारण है। यदि मनुष्य अपने दोषों-त्रुटियों को देख-देखकर निकालता जाये तथा दूसरों के सद्गुणों-अच्छाइयों को देखकर उनको अपने जीवन में अपनाता जाये तो अहंकार को मिटते-मरते देर न लगे। और अहंकार के मिटते-मरते ही मन सरल-कोमल बन जायेगा और सबके लिए मन में अपने आप प्रेम उत्पन्न हो जायेगा। सभी लोग अच्छे लगने लगेंगे। सब में अच्छाई-ही-अच्छाई दिखने लगेंगी। सबके साथ व्यवहार मधुर-सुखद बन जायेगा।

अपेक्षा होने पर आदमी यह देखने लग जाता है कि दूसरे लोगों से मुझे क्या मिल रहा है, कितना मिल रहा है, मेरे साथ उनका व्यवहार कैसा है। जब दूसरों से मन अनुकूल वस्तु, सम्मान नहीं मिल पाता या नहीं मिलने का अनुभव होने लगता है तब मन में उनके प्रति शिकायत होने लगती है और प्रेम टूटने लगता है तथा उनमें दोष दिखाई देने लगते हैं। जबकि आपसी सम्बन्ध एवं व्यवहार को सुन्दर, मजबूत और सुखद बनाने के लिए आवश्यक है दूसरों से कोई अपेक्षा न रखकर उनको ज्यादा-से-ज्यादा और सुन्दर से सुन्दर देते जाना। सच्चा प्रेम और गुणदृष्टि होने पर यह नहीं देखा जाता कि दूसरे मेरे लिए क्या कर रहे हैं क्योंकि सच्चा प्रेम केवल देना जानता है, पाना नहीं चाहता। सच्चे प्रेम

और गुणदृष्टि में कोई कामना-अपेक्षा होती ही नहीं है। अपेक्षा तो व्यापारी रखता और करता है और व्यापारी को चाहे जितना मिल जाये वह कभी सन्तुष्ट नहीं होता। उसके मन में सदैव अभाव की खटक बनी रहती है। उसे सदैव यह लगता है कि जितना चाहिए उतना नहीं मिला या नहीं मिल रहा है। इसलिए अपेक्षा रखकर व्यापारी न बनें, किन्तु प्रेमी बनें और गुणदृष्टि बनाकर रखें।

याद रखें, बाग-बगीचों में केवल फूल-फल ही नहीं होते कांटे-कंकड़, सूखे पत्ते, सूखी टहनियां, घास आदि भी होते हैं, परन्तु भौंरा इनमें से किसी को न देखकर अपनी दृष्टि फूलों पर ही रखता है। और फूलों पर बैठकर फूलों को नुकसान पहुंचाये बिना फूलों से पराग लेकर उड़ जाता है। ऐसे ही अपनी दृष्टि संगी-साथियों, घर-परिवार के सदस्यों के सद्गुणों-अच्छाइयों पर रखें और उनके साथ सेवा-प्रेम का व्यवहार बनाये रखें।

मन्दिर में रखी हुई मूर्ति चाहे छोटी हो या बड़ी, काली हो या गोरी लोग उनके आकार-प्रकार, रूप-रंग को न देखकर उनमें देव एवं भगवद्बुद्धि रखकर उनकी पूजा-अर्चना करके प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। बस ऐसी ही दृष्टि घर-परिवार के सदस्यों के प्रति बनाये रखना है। घर-परिवार के सदस्यों में अनेक दोष, त्रुटि, कमी, गलती हो सकती हैं, परन्तु आपको उनके साथ ही रहकर जीवन यापन करना है, वह भी प्रसन्नतापूर्वक तो उनके दोषों-त्रुटियों-गलतियों के लिए उनको उचित राय-निर्देश-सलाह तो दे दें, ताकि वे अपने दोषों-गलतियों को सुधार सकें, परन्तु आपको अपनी दृष्टि उनके दोषों-त्रुटियों-गलतियों पर न रखकर उनके सद्गुणों-अच्छाइयों पर रखना है। गुणदृष्टि रखकर ही अच्छा बना जा सकता है। और अच्छा जीवन जीते हुए लोगों के साथ प्रेमपूर्वक अच्छा व्यवहार किया जा सकता है।

—धर्मेन्द्र दास

जीवन का क्रिकेट देखो

रचयिता—दिनेन्द्र दास

जीवन का क्रिकेट देखो, खेले दुनिया सारी।
दिल दिल्ली में खेल मचा है, राम-रावण बलकारी॥

ग्यारह इन्द्रियां चतुर खिलाड़ी, खेले वन-नाइट डे।
कभी रन बनाते शतक, कभी होते आउट अपने से॥

मन सचिन कप्तान बना है, प्रदर्शन देखो कैसा है।
क्रिकेट कीपर काल खड़ा है, कैच मूस-बिलाई जैसा है॥

बालर फेकों दुर्गुणों को, कोई न तुझे रोक पाये।
बैट्समैन बनाओ रन सद्गुण का, जो सबके मन भाये॥

कभी बैट्समैन मारे चौका, कभी छक्का पक्का है।
कभी जीतता कभी हारता, जीवन खेल कच्चा है॥

मैं ही द्वन्द्वी मैं प्रतिद्वन्द्वी, दोनों में ही मैं ही हूँ।
जीत हार मेरी ही होती, हर्ष-शोक में मैं ही हूँ॥

यहाँ नहीं कोई पाक-भारती, न कोई प्रतिद्वन्द्वी है।
दिल पाक होता है हमारा, हरदम रहे बुलन्दी है॥

सद्गुरु संत कोच हमारे, हरदम गलती बताते हैं।
गलती सुधरी प्रदर्शन अच्छा, स्वर्ण हमें दिलाते हैं॥

चेतन अम्पायर है यारों, सभी खेलों को देख रहा।
चाहे जैसा तुम खेलो, सभी खेलों को लेख रहा॥

दिनेन्द्र मैन आफ द मैच-सीरीज, तुम्हीं को ही लेना है।
चाहे जैसा भी हो जाये, खुशियाँ सबको देना है॥

ज्ञानी ज्ञाता बहु मिले, पण्डित कवी अनेक।
राम रता इन्द्रियजिता, कोटिन मध्ये एक॥

कबीर जोगी जगत गुरु, तजै जगत की आस।
जो जग की आशा करै, जगत गुरु वह दास॥

मोर हीरा हेराय गा कचरे में

लेखक—श्री कमलापति पाण्डेय

जिसको अपने होने का एहसास है वह जीवित है और वही चेतन है। ऐसा समझते हुए भी यह आवश्यक नहीं है कि हम इसे पूरी तरह समझें ही। एक भिखारी आया। फटे हाल था, भूखा भी लग रहा था, दयनीय दिखाई दे रहा था। गृहस्वामी से उसने याचना की कि वह भूखा है, खाने को कुछ मिल जाये। गृहस्वामी ने पूछा, क्या खाओगे? उसने कहा—रुपये-दो रुपये मिल जाये, चाय पी लूंगा। जैसे कि उसने गृहस्वामी पर बड़ा एहसान किया हो कि भोजन कराने से मुक्त कर दिया, सस्ते में छोड़ दिया। गृहस्वामी समझ गये कि यह दीन-हीन भिखारी नहीं है, बना हुआ भिखारी है। उन्होंने उससे कहा कि भाई, तुम तो लखपति आदमी हो, भीख क्यों मांग रहे हो? भिखारी चौंका। उसने कहा, नहीं साहब, क्यों मजाक करते हैं, हमारे पास तो कुछ नहीं है। गृहस्वामी ने कहा, अरे क्या कहते हो तुम, अपने हाथ मुझे दे दो, मैं तुम्हें पचास हजार रुपये दूंगा। पैरों के पचास हजार अलग से। बाकी आंख, कान, नाक, दिमाग आदि के भी पैसे तय कर लो और देखो कि तुम्हारे पास कितने पैसे हैं? तुम्हारे पास तो इतना धन है कि तुम कई और लोगों को पाल सकते हो और एक प्याली चाय के लिए भटक रहे हो?

ऐसा भी सम्भव है कि किसी को यह ज्ञात ही न हो कि उसका मूल्य क्या है और ऐसा भी सम्भव है कि कोई जानता हो कि उसका मूल्य क्या है परन्तु उसका उपयोग न करता हो, और यह समझता हो कि उपयोग न करने से उसका मूल्य बना रहेगा। दोनों स्थितियों में कोई व्यक्ति भिखारी हो सकता है। इसी प्रकार यदि कोई अपना मूल्य जानता है, तब वह अपना प्रयोग उसी प्रकार करके अपना जीवन-यापन कर सकता है जैसे कि किसी के पास केवल शारीरिक बल है, तो वह शारीरिक कार्य करेगा, किसी के पास बौद्धिक बल है तो वह बौद्धिक कार्य करेगा, किसी के पास हुनर है तो वह हुनर वाला कार्य करेगा। कभी-कभी अपने बल की जानकारी न होने के कारण और कभी-कभी गलत जानकारी होने के कारण लोग या तो अपने बल की स्थिति से इतर कार्य ले लेते हैं और परेशान होते हैं और कभी-कभी इसी कारण कोई कार्य छोड़ देते हैं और परेशान होते हैं। जिसको अपना ज्ञान हो जाता है और अपना ज्ञान हो जाने के आधार पर ही वह अपनी रहनी बना लेता है, उसके लिए करने को कुछ शेष नहीं रह जाता।

'मोर हीरा हेराय गा कचरे में' एक गीत का मुखड़ा है जिसे सन्त कबीर द्वारा रचित बताया जाता है। इस मुखड़े का प्रत्येक शब्द बहुत भारी है और पूरा मुखड़ा अपने में सत्य, शिव और सुन्दर को समेटे हुए है। जिसकी स्थिति यह दी है कि उसने जान लिया कि हीरा क्या है, मेरा ही हीरा है और हीरा ही मेरा है उसके क्या कहने! जिसने यह जान लिया कि उसका हीरा हेरा गया है और यह भी जान लिया कि उसका हीरा कचरे में हेरा गया है, कचरा भी जान लिया तब उसके जानने के लिए कुछ शेष नहीं बचा। अब तो उसे कुछ जानना नहीं रह गया, केवल करना रह गया। यह ज्ञान जैसे ही हो जाता है तैसे ही बेड़ा पार होना निश्चित हो जाता है, बात केवल समय की रहती है।

गौतम बुद्ध राजकुमार थे। कहा जाता है कि शायद पहली बार जब वे महल के बाहर सैर को निकले, तब उन्होंने किसी बीमार-वृद्ध को देखा। इसके पहले महल में उन्होंने किसी बीमार-वृद्ध को नहीं देखा था। उन्हें जिज्ञासा हुई। उन्होंने साथ चलने वाले सेवक से जब पूछा, तब उन्हें बताया गया कि प्रत्येक व्यक्ति पर बुढ़ापा आता है और तब उसकी स्थिति यही होती है जो इस वृद्ध की है। गौतम बुद्ध ने ही पहली बार किसी वृद्ध को नहीं देखा था। हम सभी लोग वृद्ध और बीमार देखते हैं। अपने सामने ही लोगों को मरते हुए देखते हैं, जन्मते

हुए देखते हैं परन्तु हममें से कितने लोग जन्म, जरा और मृत्यु पर सम्यक् विचार करते हैं? यक्ष और युधिष्ठिर का संवाद हममें से बहुतों को मालूम है। पूछे गये प्रश्नों में एक प्रश्न यह था कि संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है तब युधिष्ठिर ने उत्तर दिया था कि संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि मनुष्य देखता है कि मृत्यु निश्चित है फिर भी वह ऐसा व्यवहार करता है, जैसे कि वह अमर हो। यक्ष और युधिष्ठिर का यह संवाद महाभारत युद्ध के पहले का है परन्तु यही युधिष्ठिर युद्ध जीतने के बाद अपनी मृत्यु की बात भूल जाते हैं। ऐसी कहानी है कि किसी ब्राह्मण याचक को उन्होंने अगले दिन आने के लिए कहा, तब भीम ने उस ब्राह्मण को महल के दरवाजे पर यह कहकर रोक लिया कि तुम्हें आज ही दिलवाते हैं और नगाड़े बजाने लगे। जब भीड़ इकट्ठा हुई तब उन्होंने भीड़ से कहा कि खुशियां मनाओ, महाराज ने काल को जीत लिया है। युधिष्ठिर तक बात पहुंची तो वे वहां तक चलकर आये और पूछा कि भाई भीम, हमने काल को कब जीता? भीम ने कहा–अभी तो। आपने याचक ब्राह्मण को कल बुलाया है। इसका मतलब तो यही हुआ कि कल तक काल आपका कुछ नहीं कर सकता। युधिष्ठिर को लज्जित होना पड़ा और ब्राह्मण को उन्होंने दान दे दिया।

ये दोनों कहानियां हमारे सामने हैं। युधिष्ठिर मृत्यु और अमरता के बारे में जानते थे परन्तु उन्होंने अपनी रहनी इस प्रकार की नहीं बनाई। वे जानते थे कि नहीं, यह सन्देह तो नहीं करना चाहिए परन्तु क्या किया जाये, कहानी का ही साक्ष्य कुछ और कहता है। कृष्ण जैसे महापुरुष जिन्हें ब्रह्म का अवतार, साक्षात् ब्रह्म निरूपित किया गया, युधिष्ठिर उनके कृपापात्र थे, सम्बन्धी थे, भक्त थे फिर भी स्वर्ग की लालसा में वे हिमालय गये और वहां गल गये। जिसने ब्रह्म के दर्शन कर लिये, उसे स्वर्ग जाने की क्या आवश्यकता थी? वे तो विद्वान् थे, क्या उन्हें धर्मग्रन्थों का पता नहीं था जिसमें कहा गया है कि कोई सशरीर स्वर्ग नहीं जा सकता। त्रिशंकु तो उनके पहले हुए थे। उनकी कहानी तो उन्हें ज्ञात ही रही होगी। युधिष्ठिर की बात छोड़ भी दें, तो अर्जुन का क्या करें, जिन्होंने गीता के अनुसार महाराज श्रीकृष्ण का ब्रह्म रूप भी देखा था। ऐसे ब्रह्म का दर्शन कर लेने, ऐसे ब्रह्म से गीता जैसा ज्ञान प्राप्त कर लेने के बावजूद वे भी युधिष्ठिर के पीछे–पीछे स्वर्ग जाने के लिए हिमालय की ओर प्रस्थान कर गये और गल गये—

कृष्ण समीपी पाण्डवा, गले हिंवारे जाय।
लोहा को पारस मिलै, तो काहे को काई खाय॥

इस साखी की पहली पंक्ति वह तथ्य है जो महाभारत में वर्णित है और दूसरी पंक्ति, पहली पंक्ति पर चिन्तन है। यदि पाण्डव जैसे लोहे को कृष्ण रूप में ब्रह्म जैसा पारस मिला तो ये लोहे को काई क्यों खाये? अर्थात् कहीं–न–कहीं कुछ गड़बड़ अवश्य है। आंख बन्द करके मान लेने की बजाय या आंख बन्द करके न मानने की बजाय इसी कारण प्रत्येक शब्द पर, प्रत्येक कहानी पर, प्रत्येक साक्ष्य पर, प्रत्येक उपदेश पर चिन्तन करने की आवश्यकता है चाहे कोई साधक हो, चाहे गृहस्थ हो, चाहे विद्यार्थी हो।

अब युधिष्ठिर के सापेक्ष गौतम बुद्ध को लीजिए। उन्होंने अपनी आंखों से देखा। जानने की जिज्ञासा हुई। सेवक से पूछा। उसने जो बताया उस पर चिन्तन, मनन किया। आगे उन्होंने मृतक को देखा। पूछा। चिन्तन, मनन किया और एक निश्चय कर लिया। ऐसे लोगों के जो अवतार थे, ऐसे लोग जो ऋषि हुए, मुनि हुए, सबके किसी–न–किसी गुरु का नाम लिया जाता है, मुझे गौतम बुद्ध के किसी गुरु का उल्लेख आज तक कहीं नहीं मिला। गौतम बुद्ध के गुरु सम्भवतः वे स्वयं थे। हमारे कहने का आशय यह कदापि नहीं है कि गुरु निरर्थक है, उपयोगी नहीं है। हम केवल यह कहना चाह रहे हैं कि ज्ञान पाने के लिए या अज्ञान से छूटने के लिए गुरु परम आवश्यक है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि गुरु कोई जीता–जागता व्यक्ति हो। गुरु कोई ग्रन्थ भी हो सकता है और है भी, जैसे 'गुरु ग्रन्थ साहिब' और गुरु अपनी आत्मा भी हो सकती है, अपना मन भी हो सकता है, अपनी बुद्धि भी हो सकती है। हां, यह अवश्य है कि

हममें अर्थात् शिष्य में शिष्य होने के गुण होने चाहिए। यदि कहानियों पर ही विश्वास किया जाये तो एकलव्य की कहानी क्या कहती है? गौतम बुद्ध ने वह स्थान प्राप्त किया जो यदि निरपेक्ष भाव से देखा जाये तो लाख प्रयत्नों के बावजूद तमाम विद्वान्, मुनि, कवि, भक्त आदि किसी अवतार को वह स्थान नहीं दिला सके। गौतम बुद्ध ने तो अवतारवाद का सिद्धान्त ही पलट दिया और अवतारवाद उत्तारवाद होकर रह गया। और अवतारों की तरह गौतम बुद्ध न तो पैदा हुए, न उन्होंने किसी दैवी शक्ति का उपयोग किया, न तो उन्होंने कोई दुश्मन बनाया, न ही उनका कोई दुश्मन हुआ, न तो उन्होंने किसी को मारा जबकि शेष अवतारों ने यही सब किया। जिन लोगों ने प्रारम्भ में उन्हें गालियां दीं, उनके अनुयायियों को चोर कहा, उन पर निगरानी के लिए जासूस बैठाये, उन्हें नास्तिक कहा, उन्हें विधर्मी कहा, उन्हीं लोगों ने बाध्य होकर उन्हें अवतार घोषित कर दिया। यदि यह घोषणा सच्चे मन से की गयी होती, तब भी ठीक था परन्तु यह घोषणा भी बेईमानी से भरी हुई थी। कहा गया कि बुद्ध के रूप में भगवान ने अवतार लिया और उन्होंने शूद्रों को, जो वेद पढ़ने लगे थे, बड़ी चतुराई से वेद-विरुद्ध करके वेद पढ़ने से मना कर दिया और इस प्रकार उन्होंने वेदों को अपवित्र होने से बचा लिया। ऐसे लोगों द्वारा किया गया दस अवतार वर्णन किस प्रकार का होगा, उसमें कितनी ईमानदारी होगी, यह चिन्तन-मनन से ही जाना जा सकता है।

गौतम बुद्ध को अपने हीरे का ज्ञान तरुणावस्था में ही हो गया। भर्तृहरि को यह ज्ञान जवानी में हुआ। तुलसीदास को भी यह ज्ञान जवानी में हुआ। नारद को भी यह ज्ञान जवानी में हुआ। यह ज्ञान जब भी हो जाये तभी बेड़ा पार है। यह हीरा क्या है जो गीत के मुखड़े में है? यह हीरा कोई भौतिक वस्तु नहीं है। यह कहीं हमारे अन्दर भी भौतिक रूप से नहीं है। यह न तो मन है न बुद्धि है न हृदय है न चित्त है। यह कोई इन्द्रिय भी नहीं है। यह शरीर तो है ही नहीं। तो फिर यह है क्या? पहले तो यह समझ लिया जाये कि हीरा होता क्या है? हीरा कार्बन है। यह कोयले का छोटा भाई है। कोयला भी कार्बन है। कोयला जीवाश्मों के बहुत दिनों तक ताप और दबाव में रहने के कारण बनता है। यही ताप और दबाव जब अत्यधिक हो जाता है तब कोयला ही हीरा बन जाता है। चूंकि कोयला पहले है, हीरा बाद में है इसलिए यह कोयले का छोटा भाई है। कोयला पहले है हीरा बाद में है। कोयला कल था, हीरा आज है। अब बताइए यह हीरा क्या है? और नियरायी लीजिए।

आत्मा अजर-अमर है, अनादि है यह हमारे अन्दर है। हम नहीं रहेंगे तब भी यह रहेगी। दूसरा जीवन धारण करेगी। यह जीवन हमारे वर्तमान जीवन से भिन्न होगा। हम आज मनुष्य हैं। इसके पूर्व क्या थे, अज्ञात है। इसके आगे क्या होंगे, अज्ञात है। परन्तु इतना निश्चित है कि हमें यह जीवन चौरासी लाख योनियों को भोगकर या अपने पापों को भोगकर मिला है। चौरासी लाख योनियों का दबाव, इतने बड़े कर्मफल के भोग का ताप सहकर यह जीवन प्राप्त हुआ है। अतः यह हमारा जीवन ही हीरा है। इसलिए हमारा यह जन्म जो मनुष्य योनि में हुआ है, हीरा है, मुक्ता है। मुक्ता दो अर्थों में लिया जाता है। भौतिक रूप से यह मोती है और आध्यात्मिक विचार से यह मुक्ति रूप है इसलिए मुक्ता है। कबीर ने इसलिए मनुष्य योनि में जन्म को मुक्त जन्म कहा है। यह हमारा पहला जन्म नहीं है। तप-तपाकर हमें यह जन्म मिला है। वे कहते हैं, "जहिया जन्म मुक्ता हता तहिया हता न कोय।" जब जन्म हुआ था तब हम मुक्त थे। हम हीरा थे। कोई अशुद्धि नहीं थी। हम शुद्ध, बुद्ध, चेतन थे। कोई बन्धन नहीं था। हम शारीरिक रूप से अक्षम थे। धीरे-धीरे हमारे अन्दर शारीरिक क्षमता आयी। इसी के साथ ही हमारा अन्तःकरण भी विकसित होता गया। इस विकास के क्रम में अशुद्धियां भी प्राप्त होने लगीं। यह अशुद्धियां कई प्रकार की थीं। सबसे पहले हमारे अन्दर अपने होने का गुमान जगा। अपने

होने का भाव तो ठीक था क्योंकि यह वास्तविक था परन्तु अपने होने का गुमान या अपने होने का अभिमान वास्तविक नहीं था। इसी को अहंकार या "हौं" कहा जाता है।

बच्चा जन्म लेते ही रोता है। रोने का शब्द होता है। यह शब्द इसलिए होता है कि बच्चे के अन्तर में यह है कि शब्द सुना जाएगा। बच्चा जन्म के बाद कभी रोता हुआ और कभी हंसता हुआ दिखाई देता है। जन्म के बाद पहला शब्द वह रुदन का करता है जो दिखाई भी देता है और सुनाई भी देता है परन्तु वह सोई हुई अवस्था में जो रोने और हंसने का भाव लाता है, वह केवल दिखाई देता है सुनाई नहीं देता है। यह दोनों क्रियाएं उसकी आन्तरिक क्रियाएं हैं। जो कुछ दिनों तक चलती रहती हैं। उसके बाद उसका इस प्रकार हंसना और रोना बन्द हो जाता है। वह अब शब्दों में हंसता है और शब्दों में रोता है। इसी को कबीर ने जीव को शब्दों का सुहागा मिलना कहा है। उसके कान सुनने लगते हैं, आंखें देखने लगती हैं, स्पर्श का भेद वह समझने लगता है, गन्ध पहचानने लगता है, जल और दूध का स्वाद भी पहचानने लगता है। और अब वह पांचों ज्ञानेन्द्रियों से रस, रूप, गन्ध, स्वाद और स्पर्श का आहरण करने लगता है। ये आहरण अपने-अपने गुणों के अनुसार उसके अन्तर में इकट्ठा होते जाते हैं और कालान्तर में यह इतने अधिक हो जाते हैं कि जिस जीव के साथ वह आया था और जिसके प्रकाश में वह बिना शब्द किये आनन्दित होता था या विस्मृति में दुखी होता था, उसे वह भूल जाता है और आहरित किये हुए या जिनका वह आहरण कर रहा होता है, उन्हीं के अनुसार रोता है या हंसता है, दुखी होता है या खुश होता है। यह प्रक्रिया कुछ तो उसकी अपनी इन्द्रियों के कारण होती है और कुछ उस पर बलात् लादा जाता है। यह लदान भी शब्दों के रूप में होती है। शब्द बड़ा व्यापक है। बोलकर, सुनकर, देखकर जो कुछ ग्रहण होता है या जो कुछ ग्रहण नहीं किया जाता है, वह सब शब्द ही है।

इस प्रकार हमारे अन्दर का वह जीव जो जन्म के समय पूर्णतया प्रकाशित था, इन शब्दों से धीरे-धीरे ढकता जाता है और एक समय ऐसा आता है, जब उसका प्रकाश पूर्णतया ढक जाता है। ऐसी स्थिति में हम पूर्णतया बहिर्मुख हो जाते हैं। इसके पूर्व हम कुछ-कुछ अन्तर्मुख रहते हैं। जन्म के समय पूर्ण अन्तर्मुख की स्थिति, जवानी आते-आते पूर्ण बहिर्मुख वाली स्थिति में बदल जाती है। तब हमारा हीरा हेरा गया होता है। ऐसी स्थिति जब हो जाती है तब हम यह भी नहीं जान पाते कि हमारे पास कोई हीरा भी है।

मनुष्य जन्म हीरा है। यह हमें तमाम कष्टों और तमाम प्रायश्चित्त के फलस्वरूप प्राप्त होता है। या यदि यह माने कि इसके पूर्व भी हम मनुष्य थे। तब हमारा बहुत बड़ा पुण्य था जो हमें पुनः अवसर मिला है। जिसने संसार की चकाचौंध में यह बात नहीं समझी, उसका हीरा हेरा गया। जिसने इस जीवन को अपना नहीं समझा उसका हीरा हेरा गया। जिसने हीरे को बरकरार नहीं रखा या जिसने इसे खोजने का प्रयास नहीं किया यह समझना चाहिए कि उसने आत्महत्या किया। ईशावास्योपनिषद् के तीसरे मन्त्र में ऋषि कहते हैं कि जो कोई भी आत्मा का हनन करता है, वह अन्धकार लोक को प्राप्त होता है—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महतो जनाः॥

स्वामी शंकराचार्य ने इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए बताया है कि आत्महन्ता वे लोग हैं जो अज्ञानी हैं। वे अविद्या रूप दोष के कारण अपने नित्य सिद्ध आत्मा का तिरस्कार करने से नित्य विद्यमान आत्मा का अजर-अमर आदि ज्ञान रूप कार्य अर्थात् फल मरे हुए के समान तिरोभूत रहता है इसलिए प्राकृत अज्ञानी जन आत्मघाती कहे जाते हैं। जिसने अजर-अमर आत्मा को नहीं जाना, जिसने यह नहीं जाना कि यह ही हमारे अन्दर है, जिसने यह नहीं जाना कि हमारी स्थिति इसी के कारण है और जिसने यह नहीं जाना कि यही एक हमारा अपना है और यही एक हमारे साथ रहेगा, उसने

मानो अपनी आत्मा की हत्या कर दी। आत्मा की हत्या हो तो नहीं सकती। आत्मा की हत्या करने से तात्पर्य यह है कि वह आत्माहीन हो गया, उसकी आत्मा रही ही नहीं।

गीत के पहले दो शब्द हैं 'मोर हीरा।' आशय स्पष्ट है। ऐसा कहने वाला अपने हीरे को जान गया है और यह भी जान गया है कि यह हीरा उसका अपना है। आध्यात्मिक चिन्तन में आत्म और अनात्म शब्द आते हैं। इसकी पहचान सन्तों ने बताई है। स्वामी शंकराचार्य ने अपनी आत्मा के अतिरिक्त जो कुछ भी है, उसे अनात्म बताया है। प्रारम्भ कीजिए तो उनके अनुसार सभी कोशों सहित, इन्द्रियों सहित यह शरीर अनात्म है। घर-परिवार, धन-दौलत अनात्म है। यश-कीर्ति, मान-मर्यादा, विद्या-अविद्या अनात्म है। अन्तरिक्ष, द्यु सहित सभी लोक स्वर्ग, नरक, पाताल सहित अनात्म है। सूर्य, चन्द्रमा, सभी तारे, सितारे अनात्म हैं। मन की सारी कल्पनाएं अनात्म हैं। वेद, पुराण, शास्त्र, शब्दादि सब अनात्म हैं। केवल आत्मा ही आत्म हैं, अर्थात् अपना है। कबीर साहेब ने कहा—'सन्तो आवै जाय सो माया' और 'उपजै खपै सो दूजा।' अर्थात् जो आये और जाये अर्थात् प्राप्त हो और छूटे, मिले और बिछुड़े, जन्म ले और मरे, उपजे और नष्ट हो जाये, वह सब माया है, अर्थात् अपना नहीं है, दूसरा है, अन्य है। अब जो 'मोर हीरा' कह रहा है, वह हीरे को भी जान गया है और यह भी जान गया है कि यह हीरा उसका अपना है। दुखी तो वह है ही क्योंकि उसका अमूल्य हीरा हेरा गया है। उसे यह भी मालूम है कि उसका हीरा छुप गया है, ढक गया है। हेराना और खो जाना समानार्थी हो सकते हैं। हेराये हुए को हेरा जाता है और खो गये को खोजा जाता है। हेरना और खोजना इस माने में भिन्न हो सकता है कि हेरा उसको जाता है जिसकी जानकारी होती है। और खोजा उसे भी जाता है जिसकी जानकारी नहीं होती है। गुमशुदा की तलाश हुलिये के साथ हेरना है ओर चोरी करके भागे हुए चोर को हेरना नहीं होता है, खोजना होता है। यहां हीरा हेराया हुआ है अर्थात् हीरे का हुलिया मालूम है। कितना भाग्यशाली है वह जिसने हीरे की पहचान कर ली, उसका हुलिया जान लिया और यह भी जान लिया कि यह उसका अपना था और यह भी कि वह हेरा गया है।

इसके आगे की स्थिति और ऊंची है। उसे यह भी मालूम है कि उसका हीरा हेराया कहां है। उसे ज्ञात हो गया है कि उसका हीरा कचरे में खो गया है। कचरा निरर्थक वस्तुओं को कहते हैं। ऐसी वस्तुएं जो उपयोगी नहीं हैं बल्कि किसी-न-किसी प्रकार हानि ही कर रही हैं वे कचरा हैं। सामान्यतया कचरा उसको कहते हैं जिसे गृहस्वामी या दुकानदार या फैक्ट्री वाला अपने घर, दुकान या फैक्ट्री से बाहर फेंक देता है। कल्पना कीजिए कि घर से, दुकान से, फैक्ट्री से, सड़क से, खेत से, पार्क से कचरा न फेंका जाये तो क्या होगा? घर कचरा हो जायेगा, दुकान कचरा हो जायेगी, फैक्ट्री, सड़क, पार्क सब कचरा हो जायेगा। घर, सड़क, फैक्ट्री, दुकान, पार्क हेरा जायेगा, गायब हो जायेगा, विलुप्त हो जायेगा। अब यदि हमें मालूम है कि घर था जो कचरे में हेरा गया है, घर मेरा है और कीमती है तो हम क्या करेंगे? कचरा हटा देंगे घर मिल जायेगा। अब हमें कुछ जानने की आवश्यकता नहीं रहेगी, केवल करने की आवश्यकता रहेगी।

अभी ऊपर माया की परिभाषा दी गयी। आत्म और अनात्म बताया गया। जो कुछ माया है, जो कुछ अनात्म है, वह कचरा है। कचरे में कई तरह की चीजें होती हैं। ऐसा नहीं है कि कचरे में सब कुछ बेकार ही दिखता है। कचरे में कुछ अच्छा भी दिखता है। परन्तु यदि उसने अपने से अधिक मूल्य वाली वस्तु को छिपा रखा है तो वह है कचरा ही। उसका रूप देखकर यदि हम उसे नहीं हटाएंगे तो हमें हमारा हीरा नहीं मिलेगा, वह ढका ही रहेगा, हेराया ही रहेगा।

इसको समझने के लिए पुनः हमें ऋषियों की वाणी समझनी पड़ेगी। हमारे ऋषि कहते हैं कि सत्य सुवर्णमय पात्र से ढका हुआ है, वे पूषन से निवेदन करते हैं कि वह उसे सत्यधर्म के लिए खोल दे। पात्र

खुल जाने के बाद सत्यधर्मा ऋषि दृष्टि हो जाता है। अब सोने की चकाचौंध में अगर ढक्कन न खोला तो सत्य का हीरा हेराया हुआ ही रह जायेगा। इसलिए जिस सुवर्ण पात्र में वह सत्य है वह सुवर्ण पात्र भी कचरा ही है। कबीर ने माया या अनात्म के दो रूप बताये हैं। कबीर प्राकृत जनों के बीच प्राकृत वाणी में उपदेश करते हैं इसलिए उनके तकनीकी शब्द भी प्राकृत स्वभाव लिये हुए हैं। वे माया के दो रूप बताये हैं। एक मोटी माया और दूसरी झीनी माया। मोटी माया दूर से ही बिना दिमाग पर जोर दिये स्पष्ट रूप से दिख जाती है जैसे शरीर, धन, दौलत, घर-परिवार, रोजी-रोटी, मकान, दुकान, पद-प्रतिष्ठा आदि। झीनी माया जिसे हम एक प्रकार से अच्छा समझते हैं, जिसे हम माया समझ ही नहीं पाते जैसे—वेद, शास्त्र, पुराण, पूजा, यज्ञ, हवन, तीर्थ, व्रत आदि।

अब इसमें कुछ शब्द ऐसे हैं जिनको माया समझ पाना जरा कठिन लगता है। वेद से ही शास्त्र हैं। वेद त्रिगुण अर्थात् सत, रज और तमयुक्त है। त्रिगुण ही तामस है और तामस ही माया है। वेद त्रिगुण से युक्त है, यह महाराज श्री कृष्ण ने गीता में कहा है और यह भी कहा है कि इनसे मुक्ति नहीं मिल सकती। अपने हीरे को जान लेना, उसे अपना जान लेना, कचरा हटा देना ही मुक्ति है। फिर जब वेद ऐसा नहीं कर सकते, जब वे अपने साथ त्रिगुण का कचरा लिये हुए हैं तो वे माया ही हुए। शंकराचार्य जी ने अपनी आत्मा के अतिरिक्त सबको माया कहा है। वेद आत्मा नहीं है, तब वह माया ही तो है। शास्त्र भी इसी प्रकार माया है। पुराणों का क्या कहना? उनमें कल्पना के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। पूजा, यज्ञ, हवन, तीर्थ, व्रत सब इन्हीं वेद, शास्त्र, पुराण की ही देन हैं। इनकी जड़ वही हैं। तब ये भी माया ही हैं।

मोटी माया छूटना आसान है। झीनी माया छूटना कठिन है क्योंकि झीनी माया का दास बड़ा अभिमानी होता है। वेद, शास्त्र, पुराण का ज्ञाता होने के कारण उसके रोम-रोम में अहंकार हो जाता है क्योंकि इनका ज्ञान कम लोगों को होता है तो ऐसे कम लोग अपने को औरों से श्रेष्ठ समझने लगते हैं। यह विद्या का अहंकार उन्हें जकड़ लेता है। इसीलिए ईशावास्योपनिषद् में ऋषि ने उनकी भी खबर ली है जो अविद्या में हैं और उनकी भी खबर ली है जो विद्या में रत हैं और उन्हें अविद्या वालों से भी घोर अंधकार में बताया है। माया तो बेड़ी है। इसके दो रूप, दो प्रकार की बेड़ियां हैं। मोटी माया यदि लोहे की बेड़ी है तो झीनी माया सोने की बेड़ी है। बेड़ी दोनों हैं। बन्धन दोनों हैं। अब यदि सोने की बेड़ी वाला लोहे की बेड़ी वाले से अपने को श्रेष्ठ समझे तो क्या कहा जा सकता है? यदि सोने की बेड़ी वाला यह देखकर कि इसके पास तो उसके जैसा कुछ नहीं है, उस पर हंसे तो क्या कहा जा सकता है? यदि सोने की बेड़ी वाला अपनी बेड़ी को गहना समझे तो क्या कहा जा सकता है? कहते हैं कि साठ-सत्तर साल पहले जब देवरिया के पड़रौना की ओर आयोडीन की कमी से लगभग सबको घेंघा रोग था, तब जब कोई ऐसा व्यक्ति गांव में पहुंच जाता था जिसके घेंघा नहीं होता था तो लोग उस पर हंसते थे कि देखो इसको घेंघा ही नहीं है।

अब जब अपने हीरे को जान लिया गया, कचरे को जान लिया गया और यह जान लिया गया कि फिलहाल मेरा हीरा हेरा गया है तब जानने के लिए कुछ शेष नहीं रहा। अब तो केवल यह काम बचा है कि हीरे को हेरा जाये और फिर उस पर कचरा आने से रोका जाये। यह कार्य ही साधना है। पहले दो प्रकार के कचरे बताये गये हैं। इन्हीं को हटाना है और इन्हीं से बचना है। इन्हें कैसे हटाया जाये और इनसे कैसे बचा जाये? इसके लिए इनका त्याग करना पड़ेगा। इन्हें त्यागा कैसे जा सकता है? क्या हम शरीर त्याग दें? घर त्याग दें? परिवार त्याग दें? धन-दौलत त्याग दें? रिश्ते-नाते त्याग दें? पढ़ना-लिखना त्याग दें? हां, इन्हें अवश्य त्यागना पड़ेगा परन्तु यह समझकर कि त्याग किसे कहते हैं और हमारी औकात क्या है। हमारा हीरा ही हमें औकात देता है कि हमें सदैव याद रखना चाहिए। औकात से बाहर जाने पर हमें और हमारे हीरे, दोनों को कष्ट होगा। कष्ट होने का

अर्थ ही है कि या तो हम अपनी औकात के बाहर जा रहे हैं या हमने हीरे को समझा ही नहीं। हमारा हीरा हमें कभी कष्ट पहुंचाना चाहेगा ही नहीं। वह तो सकल सुखराशि है।

इस शरीर में ही हम हैं और इसी में हमारा जीवात्मा भी, तब हम शरीर नहीं छोड़ सकते। यह तो जघन्य अपराध होगा। इससे तो हम अपने को तथा अपनी जीवात्मा को निर्वासित कर देंगे। जब हम ही समाप्त हो जायेंगे तब न तो हम कुछ कर सकेंगे न ही कुछ करने का कोई अर्थ ही होगा। शरीर ही तो साधन है। ऐसा करके तो हम अपना साधन ही गंवा बैठेंगे। कहा गया है "शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।" इसलिए शरीर का त्याग नहीं करना है, इसे बनाये रखना है। ईशावास्योपनिषद् का दूसरा मन्त्र यही कहता है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

अर्थात् कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करें। हे मनुष्य! तेरे लिए इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है जिससे तेरे कर्म का लोप हो। आशय स्पष्ट है। सौ वर्ष जीने की इच्छा होनी चाहिए परन्तु कर्म करते हुए अर्थात् हमारे सभी अंग शरीर सहित सौ वर्ष तक ठीक-ठाक रहें। दूसरी बात यह कि यह मनुष्य देह ही ऐसा साधन है जिससे हम समझबूझकर कर्म कर सकते हैं और चाहें तो ऐसे कर्म कर सकते हैं जिससे हम कर्म में लिप्त न हों। इस शरीर से हम सकाम कर्म कर सकते हैं और निष्काम कर्म भी कर सकते हैं। अन्य योनियों में यह सुविधा नहीं है। वहां तो केवल सकाम कर्म ही होगा। स्पष्ट है कि यह शरीर साधन है, साध्य नहीं है। इसी प्रकार दुनिया की सारी वस्तुएं जिन्हें हमने अनात्म कहा है वे सब ही साधन हैं। इन अनात्म साधनों में शरीर सबसे श्रेष्ठ अनात्म है और सबसे श्रेष्ठ साधन है। हम अपनी ज्ञानेन्द्रियों से संसार की सारी वस्तुओं को देखते, अनुभव करते हैं और इन्द्रियों के सहारे ही हम अपने अन्तःकरण में उनका मनन करते हैं और तदनुसार ही व्यवहार करते हैं। कर्मेन्द्रियों से ही हम भौतिक कर्म करते हैं। यह कर्म हमारे लिए अनिवार्य है। दुनिया में आकर कर्म से बचा नहीं जा सकता। जो कर्म से बचता है उसी के लिए ही ऋषियों ने कहा है कि वह अपनी आत्महत्या कर रहा होता है। अनात्म को त्यागने का अर्थ यह नहीं है कि उसे पूरा छोड़ दिया जाये। अनात्म को त्यागने का अर्थ यह है कि उसे ही साध्य न मान लिया जाये बल्कि उसे साधन माना जाये। साध्य तो आत्म-साक्षात्कार करना है, हीरे को खोजकर उसके प्रकाश में अपने को विलीन कर देना है, क्योंकि हम वस्तुतः हीरे के ही प्रकाश से प्रकाशित हैं।

चाहे मोटी माया हो और चाहे झीनी माया हो, दोनों ही यदि हम पर हावी हैं तो वे हमारी स्वामिनी हो जाती हैं और हम उनके दास। अब बताइए यदि आपका साधन ही आपका स्वामी हो जाये तो आपकी क्या दशा होगी? यदि आपके नौकर-चाकर ही आप पर हुकुम चलाने लगें तो आपकी क्या दशा होगी? यदि आप अपना कोई भी कार्य बिना इन साधनों-सेवकों के न कर सकें तो आपकी क्या दशा होगी, विशेषकर तब जब ये साधन सब कुछ करने में समर्थ हैं। इससे यह स्पष्ट होगा कि आप इन साधनों की क्षमता नहीं जानते हैं, इन्हें नियोजित करना नहीं जानते हैं, इन्हें अभीष्ट कार्य के लिए लगाना नहीं जानते हैं। इसलिए अनात्म को जानना भी आवश्यक है, इन्हें पहचानना भी आवश्यक है, इन्हें नियन्त्रित करना आवश्यक है।

कहा जाता है कि "ठाँव गुण काजर ठाँव गुण कारी।" अर्थात् कालिख ही कहीं काजल कहलाती है और कहीं पर दाग कहलाती है। यदि अनात्म को नियन्त्रित किया गया और अभीष्ट में लगाया गया तो यह आंख का काजल है और यदि इससे नियन्त्रित हो गये, बहका दिये गये तब यही माथे का कलंक है। शरीर को बनाये रखना एक बात है और शरीर को ही साधन मानकर उसे सींचना और काया सींचनहार बन जाना अलग बात है। बनाये रखना, सींचनहार न बनना ही त्याग है। जल और अन्न शरीर बनाये रखने के लिए आवश्यक हैं, ओषधियां आवश्यक हैं परन्तु अन्न, जल और ओषधि के नाम पर स्वाद लेना, मनोरंजन करना

यह सब काया सींचना है। भूख लगी तो खा लिया, यह शरीर को बनाये रखने के लिए आवश्यक है परन्तु मन किया तो जो मन किया वह खा लिया, जितना पाया उतना खा लिया, जो पाया वह खा लिया, यह काया का सींचना है और यही काया को साध्य मान लेना है। धन बटोरते जाना, जमा करते जाना यह मोटी माया में फंसना है परन्तु कर्म करके धन प्राप्त करना, उससे कुटुम्ब पालना और बच जाने पर उसे दोनों हाथ से समाज को देना त्याग है। तपस्या के नाम पर शरीर को जलाना और धन-दौलत त्यागने के नाम पर सब कुछ इस प्रकार दान कर देना कि कुटुम्ब के लोग भूखों मरें, पीढ़ियां भिखारी हो जाएं, यह सब त्याग नहीं है क्योंकि यह औकात के बाहर का काम है। कुछ चतुर लोगों ने इस प्रकार की तपस्या और त्याग की कहानियां केवल इसलिए बनाई हैं कि आप सत्य की खोज का साहस ही न कर सकें और अपना सब कुछ ऐसे लोगों को दे दें जो आपके धन पर ऐश कर सकें। कुछ साखियां प्रस्तुत हैं जिन पर विचार कीजिए—

गृह तजि के भये उदासी, बन खण्ड तप को जाय।
चोली थाकी मारिया, बेरई चुनि चुनि खाय॥
कबीर भूख कुतिया अहै, करत भजन में भंग।
याको टुकड़ा डारि के, भजन करो निःशंक॥
साँईं इतना दीजिए, जामें कुटुम समाय।
आप भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय॥
पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोऊ हाथ उलीचिए, यही सयानों काम॥
जिन जिन संबल नकियो, अस पुर पाटन पाय।
झालि परे दिन आथये, संबल कियो न जाय॥
कबीर गर्व न कीजिए, चाम लपेटे हाँड़।
हयबर ऊपर छत्र तट, तो भी देवें गाड़॥
हाँड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केश जरैं ज्यों घास।
सब जग जरता देखकर, हुआ कबीर उदास॥

स्पष्ट है कि जहां तक शरीर का प्रश्न है यह याद रखना है कि यह कभी भी हमारा साथ छोड़ सकता है। इसलिए प्रयत्न तो सौ साल ठीक-ठाक कर्म करते हुए जीने का होना चाहिए, टालना नहीं चाहिए। शरीर की सेवा चाहे जितना कर लो, इसे नष्ट होना ही होना है। धन चाहे जितना इकट्ठा कर लो इसे ले नहीं जा सकोगे। एक सीमा तक यह आपको लाभ देगा और उसके बाद आपको और आपकी पीढ़ियों को बरबाद कर देगा। जहां तक रिश्ते-नातों का प्रश्न है यह बात याद रखना है कि सभी रिश्ते-नाते हमारी क्षमता और अक्षमता के सापेक्ष हैं। हमारे रहने तक हैं। कुछ मजबूरी में हैं और कुछ स्वार्थवश हैं। कुछ हमारे स्वार्थ के कारण, कुछ अपने स्वार्थ के कारण, कुछ हमारी मजबूरी के कारण और कुछ अपनी मजबूरी के कारण। ये सभी हमारे इस तन और जीवन के साझीदार बने हुए हैं। यह कितने हैं और किस प्रकार के हैं इनकी गिनती नहीं है। हमें साझीदारी, उत्तरदायित्व स्वार्थ और निःस्वार्थ में फर्क करना पड़ेगा—

मानुष जन्म चूकेहु अपराधी। यहि तन केर बहुत हैं साझी॥
तात जननि कहैं पुत्र हमारा। स्वारथ जानि कीन्ह प्रतिपारा॥
कामिनि कहैं मोर पिउ आही। बाघिनि रूप गिरासा चाही॥
सुत कलत्र रहैं लौ लाई। यम की नाईं रहै मुख बाई॥
काग गिद्ध दोउ मरण बिचारें। सीकरश्वान दोउ पन्थनिहारें॥
अगिन कहै मैं ई तन जारों। पानी कहै मैं जरत उबारों॥
धरती कहै मोहि मिलि जाई। पवन कहै संग लेउँ उड़ाई॥
तेहि घर को घर कहै गँवारा। सो बैरी होय गले तुम्हारा॥
सो तन तुम आपन कै जानी। विषय स्वरूप भूलेउ अज्ञानी॥
इतने तन के साझिया, जन्मों भरि दुख पाय।
चेतत नाहिं मुग्ध नर बौरे, मोर मोर गोहराय॥

अब थोड़ी झीनी माया की बात कर ली जाये। जितने शब्द हम ऐसे सुनते हैं, जिनमें हमारा जीव पैठ जाता है, या जितने शब्द हम पढ़ते हैं, जो हमारे जीव के लिए कहे गये होते हैं, वे सब चाहे संस्कार के रूप में हों, परम्परा के रूप में हों, रीति-रिवाज के रूप में हों, कर्मकाण्ड के रूप में हों, भजन-कीर्तन के रूप में हों, किसी दैवीय वाणी के रूप में हों, उन पर आख्या और व्याख्या के रूप में हों, पुरानी धार्मिक या सामाजिक या ऐतिहासिक कहानियों के रूप में हों, किसी महापुरुष के वचनों के रूप में हों या इसी प्रकार के किसी भी अन्य

रूप में हों जैसे रेखाचित्र, भित्तिचित्र, मूर्ति रूप में हों, सब शब्द हैं। यह सब झीनी माया है। यह सीधे हमारे अन्तःकरण में व्याप्त होकर हमारे जीव को घेर लेते हैं। हमें स्वयं विचार करना पड़ेगा, अनुसन्धान करना पड़ेगा कि इस प्रकार के शब्दों में से कौन से शब्द हमारे लिए साधन हैं और कौन से शब्द हमारे साधनों को बिगाड़ने वाले हैं। कोई भी वाणी देववाणी या ब्रह्मवाणी नहीं है। ब्रह्म, वाणी से अतीत है। वह शब्द विदेह है। शब्द विदेह होने के कारण वह जिह्वा पर नहीं आ सकता—

शब्द शब्द सब कोई कहै वो तो शब्द विदेह।
जिभ्या पर आवे नहीं निरख परख कर लेह॥

वह जीभ पर नहीं आ सकता तब उसके बारे में हमें वाणी से कौन बता सकता है। वह दृष्टि मात्र है। बोलता नहीं। तब उसकी वाणी कहां होगी। उसे सुन कौन सकेगा?—

खुदा एक ऐसा वो एहसास है, रहे पास लेकिन दिखाई न दे॥

वह न तो दिखाई दे सकता है और न ही सुनाई दे सकता है, वह केवल अनुभव में ही आ सकता है। यह जो वाणी है, यह हमारा शब्द है, हमारे ब्रह्म का शब्द नहीं है, न ही मेरी आत्मा का शब्द है। यह वाणी मेरे हृदय की हो सकती है, चित्त की हो सकती है, बुद्धि की हो सकती है, मन की हो सकती है, हमारी आत्मा की नहीं। कहा गया है कि वहां उसके पास न तो आंखें जाती हैं, न कान जाता है, न मन जाता है। वह इन सबसे अतीत है तब उसे किसने सुना? किसने देखा? सुनने और देखने की बातें हमारी ही हैं और हम अपनी ही वाणियों को पढ़-पढ़कर आश्चर्य में हैं और मोहित हैं। यह सभी वाणियां हमारे ही जैसे हमारे पूर्वजों की हैं, जिनके गुणसूत्र हमारे अन्दर भी हैं। इसलिए इन्हें पहचान-पहचानकर गाने का कोई अर्थ नहीं—

चीन्हि चीन्हि का गावहु बौरे, बानी परी न चीन्ह।
आदि अन्त उत्पत्ति परलय, आपू ही कहि दीन्ह॥

अर्थात् आदि, अन्त, उत्पत्ति और प्रलय की बातें, तो हे मनुष्य, तुमने आप ही कहा है। इसे कहने कोई और सातवें आसमान से नहीं आया है। चतुर लोगों ने अपनी ही वाणियों को आसमान से आया हुआ बताकर अपनी चतुराई दिखाई है। इसी को पहचान लेना और इन्हीं वाणियों में से अपने काम की चीज छांट कर रख लेना और उसके अनुसार ही अपनी रहनी बना लेना झीनी माया का त्याग है। सारी वाणियां चौंतीस अक्षरों में सिमटी हुई हैं। जिसमें तैंतीस व्यंजन अनुस्वार सहित और एक स्वरों का प्रतीक ॐ है। इन्हें जान लेना तो आवश्यक है परन्तु इनके जंगल में समाहित हो जाना और उसी जंगल का होकर रह जाना, झीनी माया में पूर्णतया फंस जाना है। इन्हीं चौंतीस अक्षरों में उसके हजारों नाम हैं, हजारों कहानियां हैं, हजारों उपदेश हैं। इन्हें जानकर और उनमें से काम की चीज लेकर इनसे बाहर हो जाना अर्थात् निरपेक्ष हो जाना ही झीनी माया का त्याग है—

चौंतीस अक्षर का इहै विशेषा। सहस्त्रों नाम याहि में देखा॥
चौंतीस अक्षर से निकले जोई। पाप पुण्य जानेगा सोई॥
जो बन सायर मूझते, रसिया लाल कराय।
अब कबीर पाँजी परे, पन्थी आवहिं जाय॥
अलख निरंजन लखै न कोई। जेहि बन्धे बन्धा सब लोई॥
जेहि झूठे सब बाँधु अयाना। झूठा वचन साँच कै माना॥
धन्धा बन्दा कीन्ह व्यवहारा। कर्म विवर्जित बसै निन्यारा।
षट आश्रम औ दर्शन कीन्हा। षटरस बास षटै वस्तु चीन्हा॥
चारि वृक्ष छौ शाखा बखानी। विद्या अगणित गनै न जानी॥
औरों आगम करे विचारा। ते नहिं सूझै वार न पारा॥
जप तीरथ व्रत कीजे बहु पूजा। दान पुण्य कीजै बहु दूजा॥
पढ़ि पढ़ि पण्डित करु चतुराई। निज मुक्ति मोहि कहो समुझाई॥
चार वेद ब्रह्मा निज ठाना। मुक्ति का मर्म उनहु नहीं जाना॥
दान पुण्य उन बहुत बखाना। अपने मरण की खबरि नहीं जाना॥
पण्डित भूले पढ़ि गुनि वेदा। आप अपन पौ जानु न भेदा॥
गायत्री जुग चारि पढ़ाई। पूछौ जाय मुक्ति किन्ह पाई॥

अब प्रश्न यह है कि कैसे समझा जाये, कौन से शब्द हमारे साधन हो सकते हैं और कौन से नहीं। यह ध्यान रखना चाहिए कि शब्दों से जीव बड़ा है। कर्ता कर्म से सदैव बड़ा होता है। शब्द का कर्ता जीव है। यह शब्द से बड़ा है। द्रष्टा जीव है, वह दृश्य से बड़ा है। कल्पक जीव है, इसलिए यह कल्पना से बड़ा है।

कहानी रचने वाला जीव है, किसी को भी कोई नाम देने वाला जीव है। सोचना चाहिए कि ब्रह्म ने किस से कब कहा है कि उसका नाम ब्रह्म है? जब वह अकेला था तो उसे किसने देखा था? देखने वाला कैसे वहां पहुंच गया था? कहने का आशय यह है, सब कुछ कहने वाले चाहे आज चाहे पहले और चाहे आगे जीव ही है, जीव ही था और जीव ही रहेगा। इसलिए यह सभी शब्दों से बड़ा है। महात्मा कबीर ने पण्डितों से यही बात पूछी थी कि—

मैं तोहिं पूछों पण्डिता, शब्द बड़ा कि जीव।

और कहीं यह भी कहा है—

छौ लाख छानबे सहस रमैनी एक जीव पर होय।

रमैनी के प्रारम्भ में ही उन्होंने कहा—

अविगत की गति काहु न जानी। एक जीव कित कहउँ बखानी॥
जौ पै होय जीभ दस लाखा। तौ कोइ आय महन्थो भाखा॥

छौ लाख छौ दर्शन का संकेत है। छानबे सहस छानबे पाखण्डों का संकेत है। रमैनी को कविता, काव्य या वचन-उपदेश समझा जा सकता है। इस प्रकार कहा गया कि छहों दर्शन से सम्बन्धित, छानबे पाखण्डों से सम्बन्धित जो कुछ भी कहा गया है, वह जीव के लिए कहा गया है। अतः स्पष्ट है कि जो शब्द जीव के सुख के लिए हैं, वे ही ग्राह्य हैं। जो शब्द जीव से हमारा साक्षात्कार करा सकते हैं वे ही ग्राह्य हैं। जो शब्द हमारी रहनी को सफल बना सकते हैं वे ही ग्राह्य हैं। जो शब्द हमारी सुरति को शब्द के द्वार तक पहुंचा देते हैं, वही ग्राह्य हैं। जो शब्द हमें हमारी मानसिक लहरों पर नियन्त्रण का रास्ता बताते हैं वही ग्राह्य हैं। जो शब्द आदि के हैं, जो शब्द मूल के हैं, वही ग्राह्य हैं। जो शब्द हमारे अपने निज स्वरूप का, हमारी गरिमा का बोध करा देते हैं, वे ही ग्राह्य हैं, जिन शब्दों के केन्द्र में जीव है, वे ही ग्राह्य हैं। जिनके केन्द्र में जीव नहीं है कोई और है, कुछ और हैं तब ऐसे शब्द चाहे जिसके लिए हों, चाहे जिस वस्तु के लिए हों, ग्राह्य नहीं हैं। ऐसा समझकर ही झीनी माया से पिण्ड छुड़ाया जा सकता है।

बालपन बालपन है। इसमें हमारी बुद्धि विकसित नहीं रहती। न तो शरीर सक्षम रहता है, न इनके अवयव और न ही अन्तःकरण। परन्तु जब तक ये सब सक्षम होते हैं तब तक हमारे जीव अर्थात् हमारे हीरे के चारों ओर अपरिमित माया अपने सभी रूपों में व्याप्त हो जाती है। हमें चाहिए कि हम सक्षम होते ही अपने हीरे को पहचान लें, उसे इस घेरे को साफ कर प्रकाशित करें और पुनः घिरने न दें। कोई प्रारब्ध रहा होगा जिसके कारण पौराणिक शुकदेव ने गर्भ से ही माया त्याग दी थी। कोई प्रारब्ध रहा होगा जिससे गौतम बुद्ध ने तरुणाई आने के पहले ही माया त्याग दी। किसी प्रारब्ध के कारण ही तुलसीदास जी ने जवानी में माया त्यागी। हमारे लिए भी देर नहीं हुई है। प्रारब्ध हमारा उतना न सही लेकिन इतना तो है कि अबसे हम चेत जाएं। और चेत जाते ही बेड़ा पार हो जायेगा। उस पुरुष को शत-शत बधाइयां जिसने यह जानकर कि हमारे पास कोई हीरा है, वह हीरा हमारा अपना है, वह हीरा कचरे में हेराया हुआ है, उसे खोजने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया। यह स्थिति दुर्लभ स्थिति है। मैं सबके लिए इस स्थिति की कामना करता हूं।

('मोर हीरा हेरायगा कचरे में' से साभार)

अपने साहेब से मिल रहिये॥ टेक ॥

जो काहू की भली न आवै, बुरी काहे को कहिये॥
जो कोइ सन्त मिले बड़ भागी, सुख दुख उनसों कहिये॥
जो कोइ बादी बाद बढ़ावै, चार बात सुन रहिये॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, गुरु के चरण चित गहिये॥

× × ×

जो तू भक्ति करन को चाहत हो, निन्दा से नहिं डरिहो जी॥
पाँच छड़ी कोई सिर पर मारे, सहत बने तो सहिहो जी॥
मूरख आगे ज्ञान न कथियो, मौनी होके रहिहो जी॥
परतिरिया से नेह न करिहो, देखत दूरि से डरिहो जी॥
यह संसार विषय के काँटा, निरखि परखि पगु धरिहो जी॥
कहैं कबीर यह निर्गुन बानी, महरम होके बुझिहो जी॥

परमार्थ पथ

सद्गुरु ज्ञान ठिकाना है

मेरे 'मैं' दो हैं, एक असली है और दूसरा नकली है, बनाया हुआ है। जो मेरा असली मैं है, वह मेरा नित्य स्वरूप है, निर्विकार है, स्थिर है, शाश्वत, शुद्ध, चेतन और शांत है। दूसरा जो मैं है वह मन का बनाया है। वह शरीर, नाम, रूप, गुण, कर्म, स्वभाव, राग-द्वेष, हानि-लाभ, कम-अधिक, मोह, तृष्णा आदि का समुच्चय है। हम अपने मन में कंटीले पौधे उगाते हैं और उन्हीं से नुच-नुचकर दुखों में जलते हैं। विषैले विचार रखते हैं, इसलिए मुख से मवाद निकलता है। कटुवचन मवाद है जो अपने को तो टीसता ही है, दूसरों को भी टीसता है। यह मन का मैं शुद्ध करके ही हम सुख से जी सकते हैं। हमने मन को बिगाड़ा है, तो हम उसे ठीक कर सकते हैं।

* * *

लक्ष्य तो केवल एक है निरंतर आत्मलीनता में निमग्न रहना। आना-जाना, कहना-सुनना, मिलना-जुलना, हानि-लाभ, देखना-छूना और इन दृश्यों का स्मरण करना, सब क्षणिक है और सदैव के लिए इन्हें विस्मृति के गर्त में डूबना है। अतः इन बातों को लेकर इनमें डूबना, इनका बारंबार स्मरण करना तथा इनमें रमना अपने गले में फांसी लगाना है। अपने को सबसे छुड़ा लो। तुम्हारा तुम्हारे अलावा कुछ नहीं है, और जो तुम हो, वह शुद्ध चेतन मात्र है। अतएव सारा जड़-दृश्य छोड़कर अपने आप में रमो। कुछ न सोचना अपने आप में स्थित होना है। दृश्य का पूर्ण त्याग हो गया, तो स्वयं शेष।

* * *

हरक्षण मन को आत्म-अभिमुख रखो। मन की अहंता-ममता का 'मैं' सदैव मवाद बनाता है। अतएव उससे सावधान रहो। आत्मा के मैं में स्थित रहो। चेतन का मैं और मन का मैं बड़ा अंतर रखते हैं। चेतन के मैं में विश्राम है और मन के मैं में खुरापात है। परंतु मन के बिना जीवन का व्यवहार नहीं चल सकता है। मन से काम लो, किंतु उसमें कंटीले पौधे न उगने दो, अन्यथा उनमें उलझ-उलझ कर तुम दुखी हो जाओगे। यही तो मुख्य साधना है, मन में कोई कूड़ा-कबाड़ न बनने देना। मैं स्वयं को भूल कर मन का मैं तैयार करता हूं और उसी के उद्वेग में दुखी हो-होकर जीता हूं। यह जीवन का सही रास्ता नहीं है। सही रास्ता है मन के मैं को परिशुद्ध रखना।

* * *

मेरा ऐश्वर्य न शरीर है, न उसके कल्पित वर्ण, जाति हैं, न उसकी बुद्धि, विद्या, प्रतिभा की योग्यता है, न धन, मठ, अनुगामियों की भीड़, प्रचार, पूज्यता एवं प्रसिद्धि है। मेरा ऐश्वर्य संकल्पशून्य स्वरूपस्थिति है जो अनंत है, शाश्वत है, दुखहीन है, और परम शांत स्वरूप है। साधक को उसी स्थिति का चिंतन करना चाहिए, उसी में अनुराग बढ़ाना चाहिए और उसी का अभ्यास करना चाहिए। देह पानी का बुलबुला है। इसके फूटने में विलंब नहीं। देहाभिमान का धोखा पालना सीमांत मूर्खता है। देह का उपयोग मनोनिग्रह और पर-सेवा में करना चाहिए। यही इसका सही उपयोग है।

* * *

मनुष्य ने अपने मन को हलका करने के लिए अनेक पर्व, त्योहार तथा उत्सव-मेला निर्धारित कर रखा है। मन संसार में डूबकर दुखों से बोझिल हो जाता है। उसको हलका करने के लिए कोई उपाय सामान्य लोगों के लिए होना चाहिए। इसके आगे देवी-देवता, अवतार, ईशदूत आदि की कल्पना है। इसके आगे ईश्वर, ब्रह्म की उपासना है। जब स्वस्वरूप का बोध हो जाता है, तब उसके लिए सारा त्योहार, उत्सव और व्रत मनोनिग्रह है और उसका ब्रह्म, ईश्वर स्वस्वरूप है। आत्मा के अलावा उसके लिए कुछ नहीं है। संसार को चित्त से उतार कर

अपने आप में लीन हो जाना और इसी स्थिति में निरंतर जीना जीवन की सफलता है।

* * *

मुझ द्रष्टा के पास दृश्य नहीं है। दृश्य दूर है। दृश्य जड़ है, द्रष्टा चेतन है। चेतन तब तक द्रष्टा है जब तक वह मन-इंद्रियों के झरोखों से दृश्य को देखता है। देह में रहते-रहते सुषुप्ति में, समाधि में तथा किसी कारण से अचेती अवस्था में दृश्य को नहीं देखता है। देह छूट जाने पर वह दृश्य को न देखता है न जानता है। इस प्रकार चेतन का संबंध जड़ दृश्य से नहीं है। इस क्षणिक देह के संबंध में दृश्य का क्षणिक संबंध है। अतएव इस जड़दृश्य से अपने को सर्वथा पृथक, असंग, अकेला, अद्वैत, केवल समझकर इसी भाव को मन में दृढ़ करना चाहिए तभी स्वरूपस्थिति की प्रगाढ़ अवस्था आयेगी।

* * *

श्री निर्मल साहेब का वचन है—"देह द्वार ते जगत ज्ञान है, जगत ज्ञान है दुखदाई। देह संबंध छुटैगा तब, जब सकल वासना जरि जाई।" इस मानव जीवन का फल यही है कि सकल वासना जल जाये। चाहे जितनी भीड़ मिले, परंतु अंततः हमें अकेला ही रहना है। अपने अकेलेपन को खूब दृढ़ करो। संबंध असंबंध के लिए हो। हमारा सारा काम होना चाहिए निर्मोहिता को पक्की करने के लिए। मोह उस वस्तु में करना उचित है जो हमसे कभी अलग न हो। संसार का कुछ भी ऐसा नहीं है जो हमसे अलग न हो। देह बहुत निकट लगती है, परंतु यह क्षण-क्षण क्षीण होती है, और एक दिन इसका पूर्णतया विनाश पक्का है।

* * *

शरीर की आवश्यकताओं के पूर्ण हो जाने के बाद भी मन की आवश्यकता अलग है। मन में अभाव, रिक्तता, असंतोष रहता है। अज्ञान-वश इसे पूर्ण करने के लिए लोग नाना प्रकार के विषयों को पकड़ते हैं, किंतु वे नयी-नयी आदतें बनाकर असंतोष बढ़ा देते हैं। मन का असंतोष सर्वथा मिटकर पूर्ण संतोष की प्राप्ति तब होती है, जब त्याग होता है। निर्वाहिक वस्तुओं की आवश्यकता जीवन पर्यंत हैं, परंतु वह तो मिलती रहती है। खास बात है, आत्मसंतोष की प्राप्ति और वह सर्वत्याग से संभव है।

* * *

भीड़ क्षणिक है, अकेलापन स्थिर है। अतएव परम शांति चाहने वालों को चाहिए कि वे अपनी असंगता की भावना में दृढ़ रहें। वही आज और शरीरांत के समय तथा उसके बाद काम देगा। जीवन की सारहीनता में सार यही है कि उसे हर समय सारहीन समझते रहे। जिसने जीवन को सारहीन समझा, उसके जीवन में सार का लाभ हो गया। जिसने संसार की दुखरूपता देखी, वह सुख रूप हो गया; क्योंकि उसकी सांसारिक तृष्णा मिट गयी। संसार की तृष्णा, एषणा और राग जिनके नष्ट हो गये, वे परम सुखपूर्ण हो गये। सावधान रहो, कहीं चिपकाहट न बने।

* * *

जो होना होता है वह होता है। मेरा माना हुआ शरीर सब समय छुटा हुआ है। मैं अपने अखंड स्वरूप में स्थित हूं। मेरा आत्मधाम प्रपंचशून्य है। वह सदैव स्थिर है। दृश्य संबंध स्वप्नवत एवं क्षणिक है।

* * *

याद रखो, तुम्हारे साथ कुछ रहने वाला नहीं है। तृष्णा से सब जीव अशांत हैं। कहीं तृष्णा न बनने पावे, यह सावधानी रखो। जब तक जीवन है, संबंध में कहीं असावधानी होगी तो तृष्णा उदय होगी और दुख शुरू होगा। असावधानी के मूल में है वैराग्यहीनता। अतएव साधक को विवेक की आग उद्‌गारे रहना चाहिए। विवेक जगा रहेगा तो वैराग्य प्रखर रहेगा, वैराग्य प्रखर रहेगा, तो तृष्णा नहीं रहेगी और तृष्णाहीन मन पूर्ण शांति का जीवन है। सारा संसार मन की तृष्णा से दुखी है। अतएव इसे विषवत त्यागो। ❑

धर्म क्या है?

लेखक—श्रद्धेय संत श्री ज्ञान साहेब जी

विश्व के सभी संत-मनीषी मानव-जीवन की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं क्योंकि मानव जीवन में खोज करने के लिए अक्ल मिली हुई है। आज आदमी अक्ल के बल पर चन्द्रलोक की यात्रा कर रहा है और मंगलग्रह पर भी जाने की उड़ानें भर रहा है। अक्ल के बल पर ही इंसान भव्य भवनों का निर्माण कर रहा है, कल-कारखानों का निर्माण कर रहा है। इस धरतीतल पर मनःकल्पित स्वर्ग जैसी सुविधाओं का अम्बार आदमी ने लगाया है तो केवल अक्ल के बल पर। मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो सत्य का अनुसंधान कर सकता है। तो पहली विशेषता है कि मानव के पास खोज करने के लिए अक्ल मिली हुई है।

मानव जीवन के प्रशंसनीय होने का दूसरा हेतु यह है कि कर्म करने में मनुष्य पूर्णरूपेण स्वतंत्र है। आप अपने जीवन में शुभ कर्मों का सम्पादन कर सकते हैं और शुभ कर्मों का सम्पादन न करना चाहें तो इससे भिन्न भी कर सकते हैं क्योंकि आप परम स्वतंत्र हैं।

कर्म करने की स्वतंत्रता और खोज करने की अक्ल ये दो अनुपम विशेषताएं मनुष्य को प्राप्त हैं। तो आज अक्ल के आधार पर हम खोज करें कि धर्म क्या चीज है? खोज करने के लिए जीवन में श्रद्धा और बुद्धि दोनों का समन्वय होना चाहिए।

धर्म के नाम पर मंदिर गिराया जाता है, मस्जिद गिरायी जाती है, आदमी का रक्तपात हो रहा है, धर्म के नाम पर अनेक प्रकार के अत्याचार हो रहे हैं। इसलिए आज प्रबुद्ध मानव के मन में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि क्या वास्तव में यही धर्म है जिसके नाम पर इतना रक्तरंजित इतिहास लिखा गया है? धन के लिए इतनी हत्याएं नहीं हुई हैं जितनी हत्याएं धर्म के नाम पर हुई हैं।

मानव मस्तिष्क में तरह-तरह के प्रश्न उठते हैं। उन प्रश्नों का यथार्थ समाधान मिलना चाहिए। क्योंकि जब तक व्यक्ति को बौद्धिक समाधान नहीं मिलता है तब तक उसे पूर्ण संतोष नहीं मिलता है।

यह कहकर हम किसी को दबा तो सकते हैं कि हमारे ग्रंथ में यह लिखा है इसलिए इसे आप मान लें। हमारे पूर्वज भी यह मानते आये हैं, इसलिए आप मान लें। किन्तु इससे उस व्यक्ति को संतोष नहीं होता है। संतोष तो उसे तब होता है जब वह विवेक की कसौटी पर कसता है, परखता है, जांच करता है और मान्यता जब बिल्कुल खरी उतरती है तब उसे संतोष होता है। इस विवेक की कसौटी पर हम धर्म को कसकर देखें।

कुछ लोगों की यह धारणा है कि धर्म वस्तुतः है कुछ नहीं, धर्म केवल मान्यता मात्र है। जैसे हिन्दू मंदिर में जाकर पूजा करता है और कहता है कि यह मेरा धर्म है। किन्तु उसके बगल में एक और आदमी रहता है और वह इस्लामी है। उससे वह कहे कि चलिये मंदिर में भगवान की पूजा करना है तो वह तुरन्त उत्तर देगा कि यह मेरा धर्म नहीं है। फिर उसका धर्म क्या है? उसका धर्म है मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ना। अगर आपसे वह इस्लामी आकर कहता है कि नमाज पढ़ने का समय हो गया, चलिये नमाज पढ़ने के लिए तो आप कहेंगे कि यह मेरा धर्म नहीं है।

एक तीसरा व्यक्ति है वह कहता है कि आज रविवार का दिन है, चलिये गिरजाघर में प्रार्थना करने के लिए तो आप कहेंगे कि यह मेरा धर्म नहीं है। और उससे आप भी कहें कि चलिए मंदिर में भगवान की पूजा करने का समय हो चुका है तो वह कहेगा कि यह मेरा धर्म नहीं है।

इस प्रकार जो एक के लिए धर्म है वह दूसरे के लिए धर्म नहीं है और जो दूसरे के लिए धर्म है वह उसके लिए धर्म नहीं है। इसीलिए कुछ लोगों के मन में यह होता है कि धर्म कोई चीज नहीं है। धर्म केवल मान्यता मात्र है।

एक की मान्यता है कि मंदिर में भगवान है। वह मंदिर जाता है और श्रद्धा से पूजा करता है। एक मस्जिद में जाकर श्रद्धा से नमाज पढ़ता है। एक गिरजाघर में जाकर श्रद्धा से प्रार्थना करता है किन्तु यह कोई धर्म नहीं है। यह केवल धारणा है। संप्रदाय जगत की मान्यता है। धर्म सबके लिए धर्म होता है। उदार विचार रखकर, सावधान होकर आप सुनें कि धर्म एक होता है, सनातन होता है, सार्वभौम होता है और सबके लिए होता है।

जैसे पृथ्वी सबके लिए पृथ्वी है। जल सबके लिए जल है। ऐसा नहीं है कि जल हिन्दू के लिए जल हो, इस्लामी के लिए आग हो, ईसाई के लिए वायु हो। जल जिसके यहां होगा, जल ही होगा। इसी प्रकार अग्नि सबके लिए अग्नि है। वायु सबके लिए वायु है। जिस प्रकार सत्य सबके लिए सत्य है, ठीक इसी प्रकार धर्म सबके लिए धर्म है।

जो सबके लिए धर्म हो, वास्तव में वही धर्म है और जो सबके लिए धर्म न हो, एक आदमी के लिए हो, एक जाति के लिए हो, एक परम्परा के लिए हो, वह धर्म नहीं है। वह मजहब है, सम्प्रदाय है और परम्परा है। लोगों ने यही बड़ी भूल की है कि मजहब को धर्म कहना शुरू कर दिया है।

मजहब, सम्प्रदाय, परम्पराएं अलग चीज हैं और धर्म इनसे अलग है। धर्म एक होता है, सनातन, शाश्वत और अपरिवर्तनशील होता है लेकिन मजहब अनित्य होता है। मजहब का जन्म किसी महापुरुष के द्वारा किसी देश और किसी काल में होता है। संसार में जितने मजहब हैं सबके मूल में कोई न कोई महापुरुष है।

मजहब का जन्म देश-काल सापेक्ष होता है लेकिन धर्म देश-काल सापेक्ष नहीं होता है बल्कि धर्म देश-काल निरपेक्ष होता है। मजहब बनते और मिटते रहते हैं, धर्म शाश्वत होता है। मजहब में परिवर्तन होता है। धर्म में कभी भी किंचित परिवर्तन नहीं होता है। मजहब अनेक होते हैं किन्तु धर्म एक होता है।

भूल यही हुई है कि लोगों ने मजहब को धर्म मान लिया है और इसी भूल का परिणाम है कि हमारे राष्ट्रनायकों ने भी बिना विचार किये भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित कर दिया है। राष्ट्र धर्मनिरपेक्ष नहीं हो सकता है, राष्ट्र सम्प्रदायनिरपेक्ष हो सकता है। सम्प्रदायनिरपेक्ष जीवन होता है किन्तु धर्मनिरपेक्ष जीवन नहीं हो सकता है। धर्म को लोगों ने ठीक से समझने का प्रयास नहीं किया है।

मैं एक घटना से प्रारम्भ करूं। मैं शिक्षकों के विशेष आग्रह से एक कालेज में प्रवचन के लिए गया। वहां के प्रोफेसर महोदय ने मुझसे पूछा—'महाराज, आप किस विषय पर बोलेंगे।'

मैंने कहा—'मैं बच्चों को बताऊंगा कि धर्म क्या है?'

प्रोफेसर ने कहा—'यह धर्मनिरपेक्ष संस्था है। यहां धर्म की कोई जरूरत नहीं है।'

मुझे उनकी बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ये प्रोफेसर हैं और एक प्रोफेसर के मुख से यह निकले कि यहां धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने कहा कि महाराज, कोई दूसरा विषय बतायें।

मैंने तुरन्त परिवर्तन किया और उनसे कहा—'ठीक है, मैं बच्चों को बताऊंगा कि सदाचार क्या चीज है और उसका पालन जीवन में क्यों आवश्यक है?'

तब उन्होंने कहा—'हां, आप इस विषय पर बोल सकते हैं।'

बोलने की व्यवस्था हुई। बोलनेवाला तो स्वतंत्र होता है। प्रवचन के मध्य में मैंने धर्म का उदाहरण लिया और कहा कि विद्यार्थी का धर्म है अध्ययन करना। अगर विद्यार्थी अपना धर्म छोड़ देता है तो विद्यार्थी फेल हो जायेगा। अध्यापक का धर्म है अध्यापन कार्य ठीक से करना। अगर अध्यापक अपना धर्म छोड़ देता है तो विद्यालय से निकाल दिया जायेगा। इसी प्रकार पत्नी का धर्म है पातिव्रत्य पालन करना। अगर पत्नी अपना धर्म छोड़ देती है तो घर से निकाल दी जाती है। साधु का धर्म है साधना करना। अगर वह

अपना धर्म छोड़ देता है तो साधु डिपार्टमेंट से निकाल दिया जाता है।

धर्म वह तत्त्व है जिसके धारण करने से व्यक्ति अपने पद पर प्रतिष्ठित होता है, गौरवान्वित होता है। धर्मविहीन मनुष्य की वह दशा होती है जो सड़े हुए फल की होती है। जैसे सड़ा हुआ फल फेंक दिया जाता है उसी प्रकार धर्मविहीन मनुष्य की दशा होती है।

मेरा प्रवचन जैसे ही समाप्त हुआ, प्रोफेसर महोदय उठकर खड़े हुए और कहे कि आज हमें एक नयी दिशा मिली है। मैंने आज समझा कि धर्म का अर्थ है कर्तव्य का पालन। वास्तव में 'धारयति लोकं इति स धर्मः'—जो लोक को धारण करता है उसे धर्म कहते हैं।

संस्कृत भाषा में 'धृञ्धारणे' धातु से धर्म शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है धारण करना। जो लोक को, समाज को धारण करता है उसे धर्म कहते हैं। धर्म की और विस्तृत परिभाषा करूं तो कहना पड़ेगा कि पदार्थ के स्वभाव का नाम धर्म है।

समस्त संसार में दो ही पदार्थ हैं—एक जड़ और दूसरा चेतन। जड़ पदार्थ में पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार मुख्य हैं और पांचवां आकाश है जो अवकाश मात्र है। इनसे भिन्न चेतन है। इन पदार्थों में उनका अपना-अपना धर्म विद्यमान है।

पृथ्वी का धर्म है कठोरता, जल का धर्म है शीतलता, अग्नि का धर्म है उष्णता एवं प्रकाश प्रदान करना, वायु का धर्म है कोमलता और शरीर में विद्यमान चेतना का धर्म है जानना। हमारा और आप सबका भी अनुभव है कि जिस दिन शरीर से चेतना निकल जाती है फिर कोई कुछ भी नहीं जानता है। आंख तब भी रहती है किन्तु आंख देखती नहीं है। कान तब भी रहता है किन्तु सुनता नहीं है। हाथ तब भी रहते हैं किन्तु कुछ करते नहीं हैं। अब वहां सारी क्रियाएं शांत हो जाती हैं क्योंकि जाननेवाला निकल गया है।

हमारे शरीर के अन्दर जो चेतना है, जो ज्ञान है, उस ज्ञान के अनुसार आचरण करना धर्म है और उसके विपरीत आचरण करना अधर्म है। तात्पर्य यह है कि दुराचार को त्याग करके सदाचार को धारण करना धर्म है। इसीलिए हमारे पूर्वजों ने कहा कि 'आचारः प्रथमो धर्मः। आचारः परमो धर्मः। आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।' यह कितनी सुन्दर घोषणा उन्होंने की है। सदाचार ही आदमी का मुख्य धर्म है।

आदमी कितना ही पूजा करता हो, माला फेरता हो, हवन करता हो, रोजा रहता हो, नमाज पढ़ता हो, प्रार्थना करता हो, कर्मकाण्ड कितना क्यों न करता हो, गलत काम में पकड़ा जाता है तो कोई आदमी उसे धर्मात्मा नहीं कह सकता है। अगर उसके जीवन में गलत कर्म होता है तो आदमी यही कहेगा कि यह बहुत बड़ा अधार्मिक आदमी है।

धर्म का मूलतत्त्व है सदाचार और सदाचार है मानवता। इसलिए मानवता ही असली धर्म है। इंगरसोल ने लिखा है कि 'ह्यूमैनिटी इज द ओनली रिलीजन' अर्थात मानवता ही केवल धर्म है। आज मानवता की आवश्यकता है। अगर आदमी के जीवन में यह धर्म सचमुच उतर जाये तो हमारे घर, परिवार, समाज और देश की व्यवस्था अपने आप ठीक हो जाये। आज धर्म के अभाव में भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा तक पहुंच गया है। धर्म के अभाव में आज आदमी बहुत दुखी है। मनुष्य के जीवन में अनेक समस्याएं उपस्थित हैं क्योंकि वह धर्म के अनुकूल जीवन नहीं जी रहा है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने लिखा है—

जो धर्म पालन से विमुख जिसको विषय ही भोग्य है।
संसार में मरना उसी का सोचने के योग्य है।
जो इन्द्रियों को जीतकर धर्माचरण में लीन है।
उसके मरण के सोच क्या वह मुक्त बंधनहीन है।

धर्म है सदाचरण। आदमी का जो पवित्र जीवन है, यही वास्तव में धर्म है। धर्म है मन, वाणी और कर्मों की पवित्रता। धर्म को विभिन्न पहलुओं से हम देखें। धर्म है 'स्व' का अनुसंधान करना और विज्ञान है 'पर' का अनुसंधान करना। धर्म 'स्व' का अनुसंधान करता है

अर्थात जो अनुसंधान करनेवाला है उसका अनुसंधान धर्म करता है।

विज्ञान और धर्म दोनों के खोज की दिशा भिन्न-भिन्न है किन्तु दोनों विरोधी नहीं हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। विज्ञान से हमें भौतिक समृद्धि मिलती है तो धर्म से हमें मानसिक समृद्धि मिलती है। और इन दोनों समृद्धियों से जीवन समृद्ध होता है, जीवन का सर्वांगीण विकास होता है। इसलिए जीवन में विज्ञान और धर्म दोनों की महती आवश्यकता है।

हमारे पूर्वजों ने लिखा है 'यतो अभ्युदयनिःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः' जिससे लौकिक उन्नति और मोक्ष की सिद्धि होती है, वह धर्म है। देखिये, हमारे पूर्वजों का चिंतन कितना उदार है! पहले वे लौकिक उन्नति की बात करते हैं, फिर मोक्ष प्राप्ति की बात करते हैं। लौकिक उन्नति पर अगर धर्म का नियंत्रण न रहे तो आदमी अधर्म की ओर प्रवृत्त हो जायेगा। धर्म की और भी साफ परिभाषा बताते हुए मनु जी महाराज मनुस्मृति में लिखते हैं—

धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

पहला लक्षण उन्होंने लिखा 'धृतिः।' धृति का सामान्य अर्थ होता है धैर्य धारण करना। जिस समय आदमी के मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार ये मानसिक विकार उत्पन्न होते हैं, उस समय अगर आदमी धैर्य न धारण करे तो आदमी एक ही दिन में मारा-पीटा जायेगा और जेल के अन्दर भी बन्द हो जायेगा। इसलिए जीवन में धैर्य की बहुत बड़ी आवश्यकता है।

आदमी सदैव से इन्हीं मानसिक विकारों के कारण दुखी है। इन मानसिक विकारों के कारण ही आदमी का स्वतंत्र जीवन परतंत्र हो गया है। इन मानसिक विकारों से ऊपर उठने के लिए आदमी के जीवन में धैर्य की बड़ी आवश्यकता है।

वेदव्यास जी 'धृति' का बहुत विशाल अर्थ करते हैं। उन्होंने श्रीमद्भागवत पुराण में अर्थ किया 'जिह्वोपस्थ जयो धृतिः।' जिह्वा और उपस्थ इन दो इन्द्रियों पर जय करने को उन्होंने धृति बतलाया। आज आदमी अपने जिह्वा पर नियंत्रण नहीं कर पा रहा है।

जिह्वा-स्वाद के कारण आज हम देखते हैं कि धरतीतल पर सुबह होते ही न मालूम कितने बकरों का जीवन बिदा हो जाता है, कितने मुर्गों का जीवन बिदा हो जाता है और कितनी मछलियां संसार से बिदा हो जाती हैं। केवल आदमी के अपनी जिह्वा पर नियंत्रण न करने से ही संसार से करोड़ों प्राणियों का जीवन बिदा हो जाता है।

जिह्वा पर नियंत्रण न करने का परिणाम यह निकला है कि आदमी अनेक मेवा-मिष्ठान्न खाने के बावजूद तम्बाकू खा रहा है जिसमें कोई प्रोटीन नहीं है। उसमें निकोटिन जरूर है तो भी लोग उसे खा रहे हैं और सामान्य व्यक्ति ही नहीं खा रहे हैं बल्कि सरकारी कर्मचारी, आफिसर, मिनिस्टर और पुजारी भी खाते हैं।

मैं जहां पढ़ रहा था वहां के पुजारी जी बहुत श्रद्धा भाव से शंकर भगवान की पूजा करते थे। शंकर जी में उनकी अनन्य श्रद्धा थी। मैं प्रतिदिन पूजा के समय मंदिर जाता था। एक दिन मैं किसी विशेष कारण से न जा सका तो पुजारी जी स्वयं प्रसाद लेकर मेरे कमरे में आ गये।

मैंने उन्हें आदरपूर्वक बैठाया, उनको सम्मान दिया। फिर मैंने उनसे विनोद में कहा कि पुजारी जी, जब आप पूजा करते हैं तो ऐसा लगता है कि आप धरतीतल के इंसान नहीं हैं। लगता है कि आप किसी देवलोक से आये हुए हैं। इतनी निष्ठा और इतने भाव से आप भगवान शंकर की पूजा करते हैं कि देखकर मन में बड़ी श्रद्धा होती है किन्तु जैसे ही आप पूजा से बाहर आते हैं तुरन्त तम्बाकू रगड़ने लगते हैं। तो क्या भगवान आपको मना नहीं करते हैं कि यह तम्बाकू जहर है, इसे क्यों खाते हो? पुजारी जी मुस्कराने लगे।

कहने का भाव यह है कि जब तक आदमी के अन्दर मानसिक निर्मलता नहीं होती है तब तक आदमी के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

आदमी श्रद्धा से पूजा करता है, नमाज पढ़ता है, प्रार्थना करता है परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि इतना सब कुछ करने के बाद भी वह निर्विकार जीवन नहीं जीता है। लोग धर्म को व्यावहारिक स्वरूप नहीं दे पाते हैं। इसलिए वेदव्यास जी ने कहा कि अपनी जिह्वा पर नियंत्रण रखो, जय प्राप्त करो।

आदमी को शुद्ध शाकाहारी जीवन जीना चाहिए। आदमी के जीवन में किसी प्रकार का कोई व्यसन नहीं होना चाहिए। इन व्यसनों के कारण से आज हमारे देश का लाखों-करोड़ों नहीं, अरबों रुपया रोज बेकार में चला जा रहा है। अगर आदमी धर्म के इस एक अंग धैर्य का पालन कर रहा होता तो हमारा राष्ट्र आज बहुत ज्यादा समृद्धिशाली बन जाता।

दूसरा उन्होंने कहा कि उपस्थ इन्द्रिय पर जय का नाम धृति है। आज इन दोनों दिशाओं पर चिंतन करने की आवश्यकता है। आदमी ने जितनी गाड़ियां बनायी है सबमें ब्रेक और लाइट का प्रयोग किया है। लेकिन खेद के साथ कहना पड़ता है कि जीवनरूपी गाड़ी को आदमी ने बिना ब्रेक और लाइट के तेजी से हांक दिया है इसीलिए एक्सीडेंट हो गया है—जनसंख्या वृद्धि की समस्या पैदा हो गयी है, अपहरण और बलात्कार की समस्या पैदा हो गयी है, दुर्व्यसन की समस्या है।

आदमी के जीवन में कोई ब्रेक नहीं है, कोई संयम नहीं है, कोई ज्ञान नहीं है। आदमी बिना संयम के जीता चला जा रहा है जिससे इतनी बड़ी समस्या पैदा हो गयी है देश के सामने कि हर साल करोड़ों की आबादी बढ़ती चली जा रही है।

धर्म के सम्पूर्ण लक्षण की बात तो बहुत दूर रही, इस एक ही अंग धृति को अगर आदमी अपने जीवन में धारण कर ले, अपनी इन्द्रियों पर कंट्रोल कर ले, तो आदमी का जीवन पूर्णतया सुखी हो जाये।

माइण्ड कंट्रोल के अभाव में ही बर्थ कंट्रोल की समस्या पैदा हो गयी है। अगर आदमी माइण्ड कंट्रोल कर लेता तो बर्थ कंट्रोल कभी न कराना पड़ता। तब इन या इन जैसी सारी समस्याओं का अपने आप समाधान हो जाता। इसलिए हर आदमी को धर्म के इन अंगों की बहुत बड़ी जरूरत है।

एक बार मैं कलकत्ता में था। वहां के धर्मतल्ला के मैदान में कार्यक्रम हो रहा था। क्षमा पर मैंने प्रवचन किया। वहां सादे ड्रेस में मिलिटरी के जवान बैठे हुए थे। ज्यों ही मेरा प्रवचन समाप्त हुआ, वे आकर मेरे पास खड़े हो गये और कहने लगे कि महाराज जी, आपने कहा कि 'क्षमा वीरस्य भूषणम्'—वीर पुरुषों का भूषण है क्षमा करना। अगर भारत पर कोई राष्ट्र चढ़ाई कर दे और हमलोग उसे क्षमा कर दें तो न आपकी सुरक्षा होगी और न देश की, तब क्या होगा?

उनके इतना कहते ही मैं तुरन्त समझ गया कि ये मिलिटरी के आदमी हैं। मैंने कहा कि भाई, युद्ध तो कभी-कभी होता है लेकिन क्षमा की आवश्यकता पदे-पदे होती है। हमारे व्यावहारिक जीवन में क्षमा की बहुत बड़ी आवश्यकता है। घर में पत्नी भोजन बनाती है तो कभी वह नमक डालना भूल जाये और अगर आप क्षमा न करें और राइफल है आपके पास तो क्या आप उसको गोली मार देंगे?

आपका बच्चा है उसे आपने कुछ निर्देश दिया लेकिन उसका अपना मन है, उसने नहीं माना। आपने उसको जो काम बताया है, उसने नहीं किया, तो क्या उसको आप गोली मार देंगे, क्षमा नहीं करेंगे? आप क्षमा करेंगे क्योंकि क्षमा की जरूरत जीवन में पग-पग पर होती है। युद्ध की जरूरत कभी-कभी होती है। जब युद्ध की आवश्यकता हो तो उस समय अपने देश की, अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए हमें तैयार रहना चाहिए लेकिन व्यावहारिक जीवन में हमें क्षमा करने के लिए तैयार रहना चाहिए। किसी कवि ने कितना बढ़िया कहा है—

क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।
क्या विष्णु का घटि गया, भृगु ने मारी लात॥

और एक शायर लिखता है—

अगर बद आदमी अपनी बदी से बाज नहीं आता।
तो नेक को अपनी नेकी से क्यों बाज आना चाहिए।

क्रमशः

बीजक चिंतन

भूत-प्रेत-योनि केवल भ्रम है

शब्द-105

ये भ्रम भूत सकल जग खाया, जिन जिन पूजा ते जहँड़ाया॥
अण्ड न पिण्ड न प्राण न देही, कोटि कोटि जिव कौतुक देही॥
बकरी मुरगी कीन्हेउ छेवा, आगल जन्म उन्ह औसर लेवा॥
कहहिं कबीर सुनो नर लोई, भुतवा के पुजले भुतवा होई॥

शब्दार्थ—खाया=खोखला कर दिया, दुर्बल बना दिया। जहँड़ाया=ठगाया गया, ठगा गया, हानि उठाया। अण्ड=सूक्ष्म शरीर, बीज। पिण्ड=स्थूल शरीर, देह। प्राण=प्राणवायु, सांस। देही=देह का धारक, जीव। कोटि-कोटि=करोड़ों-करोड़ों। कौतुक=कुतूहल, अचंभा, तमाशा। छेवा=वध, हत्या। औसर=अवसर, मौका, दावं, बदला। लोई=लोगों।

भावार्थ—जो वस्तुतः भ्रममात्र है उस भूत-प्रेत की मान्यता ने मनुष्य के मन को दुर्बल बनाकर उसे खोखला कर दिया है। जो लोग भूत-प्रेत की पूजा-अर्चा में पड़े वे मानो अपने आप को ठगा दिये॥ 1॥ भूत-प्रेत के न सूक्ष्म शरीर है न स्थूल शरीर, न प्राण है और न जीवात्मा। अर्थात वह कुछ नहीं है, फिर भी करोड़ों-करोड़ों लोग इस तमाशे में अपना सिर पटक रहे हैं॥ 2॥ ये अंधविश्वासी लोग भूत-प्रेतों के नाम पर बकरी-मुरगी आदि निर्दोष प्राणियों का वध करते हैं। ध्यान रहे, भविष्य जन्म में वे अपना बदला इनसे लेंगे। जो दूसरों का सिर काटता है उसका सिर एक दिन कटता है ॥ 3॥ कबीर साहेब कहते हैं कि हे नर-लोगो ! सुनो, भूत-प्रेत की मान्यता, पूजा आदि करने से उनका भ्रम मन में दृढ़ होता है, अन्यथा वे कुछ नहीं हैं॥ 4॥

व्याख्या—यह जंगली युग की धारणा है कि आदमी जब मर जाते हैं तब उनमें से जो अशांत आत्माएं हैं वे भूत-प्रेत की योनि में जाकर भटकती हैं। वे पहले से अधिक बलवान हो जाती हैं। वे मनुष्यों को पीड़ित करती रहती हैं। कहा गया कि जो अशांत स्त्रियां हैं वे मरकर चुड़ैल अर्थात प्रेतिन होती हैं और जो अशांत पुरुष हैं वे मरकर प्रेत होते हैं जिन्हें भूत कहते हैं। यदि ब्राह्मण मरकर भूत हुआ तो उसे ब्रह्मराक्षस कहते हैं। मुसलमानों के विश्वासानुसार भूत के लिए जिन या जिन्न शब्द है। यह सब केवल शब्द का अन्तर है। वह मूलरूप में भूत-योनि है जिनकी कल्पना करीब-करीब सभी वर्गों में है और जंगली युग की देन है।

प्रेत का अर्थ है गया हुआ तथा भूत का अर्थ है बीता हुआ। जीव शरीर छोड़कर चला गया यही मानो प्रेत हो गया, और चले जाने के बाद बीत गया तो मानो भूत हो गया। बस, भूत-प्रेत का इतना ही अर्थ है। भूत-प्रेत की कोई योनि नहीं है। यदि उनकी योनि होती तो उनके वंशजों का पता चलता। सूक्ष्म-से-सूक्ष्म देहधारियों को देखा जा सकता है, फिर भूत-योनि के देहधारी क्यों नहीं दिखाई देते ! किसी खानि के देहधारी की अपनी प्रजनन-प्रक्रिया होती है, आहार-विहार के ढंग होते हैं। भूत-योनि के संबंध में यह सब कुछ भी पता नहीं चलता।

लोग कहते हैं कि भूत-प्रेत हवा के रूप में घूमते हैं और जब चाहते हैं तुरन्त शरीर धारण कर लेते हैं। वे बिल्ली, बैल, भैंसा, हाथी कुछ भी तुरन्त बन जाते हैं और तुरन्त लुप्त भी हो जाते हैं। यह सब मनुष्य का केवल भ्रम है। जब आदमी भूत-प्रेत की भ्रांति से पहले ही भयभीत रहता है तब रात में किसी प्रकार दूर जलते-बुझते प्रकाश, ठूंठ, पेड़ आदि देखकर उन्हें भूत-प्रेत मान लेता है। कभी-कभी अपने दृष्टिदोष से कुछ-का-कुछ दिख जाता है और मनुष्य उसे भूत-प्रेत मान लेता है।

साहेब इस शब्द के शुरू में ही कहते हैं "ये भ्रम भूत सकल जग खाया, जिन जिन पूजा ते जहँड़ाया।" यहां भूत के नाम में भ्रम विशेषण है। भूत क्या है? भ्रम। हमारे मन का भ्रम भूत बनकर खड़ा हो जाता है। यह भूत-प्रेत का भ्रम केवल अनपढ़ गंवारों में ही नहीं, किन्तु शिक्षित, विद्वानों तथा शहरी लोगों में भी है। गंवार तो भूत-प्रेत के विषय में मोटे ढंग से कहेंगे कि हमने उन्हें देखा है, परन्तु शिक्षित कहलाने वाले लोग विज्ञान का दुरुपयोग कर उसके बल से भूत-प्रेत सिद्ध करते हैं। वे कहेंगे कि देखो टेलीविजन द्वारा दृश्यों का लुप्तीकरण तथा प्रकटीकरण होता है। दृश्य प्रतिबिम्बों का लघु रेडियो तरंगों द्वारा प्रेषण किया जाता है तथा निकटस्थ या दूरस्थ स्टेशनों पर उन्हीं

प्रतिबिम्बों का पुनः निर्माण कर दिया जाता है। इसी प्रकार भूत-प्रेत जब चाहते हैं तब प्रकट होते हैं और जब चाहते हैं तब लुप्त हो जाते हैं। आजकल जितना विज्ञान बढ़ रहा है शिक्षितों का एक वर्ग तो उससे वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर प्रबुद्ध हो रहा है, परन्तु शिक्षितों का एक दूसरा वर्ग अधिकाधिक जड़ होता जा रहा है। यह वर्ग उस विज्ञान को आधार बनाकर अंधविश्वास फैलाता है जिससे वस्तुतः अंधविश्वास मिटाया जा सकता है। आजकल कितनी पत्र-पत्रिकाएं तन्त्र-विशेषांक तथा भूत-प्रेत विशेषांक छापती हैं। इनका खंडन करने वाली पत्र-पत्रिकाएं तो दुर्लभ हैं, हां, इनकी चमत्कारिक कल्पित बातें छाप-छापकर विद्वान कहलाने वाले लोग समाज का आर्थिक तथा बौद्धिक शोषण करते हैं।

साहेब कहते हैं कि इस भ्रमपूर्ण भूत-योनि की भावना ने संसार के लोगों के मन को दुर्बल बना दिया है। इसी दुर्बलता का फल है कि अशिक्षित-शिक्षित लोग कोई कष्ट होने पर भूत-प्रेत का भ्रम कर झाड़-फूंक के चक्कर में पड़े रहते हैं। लोग औषध-संयम न कर झाड़-फूंक तथा पूजा-पाठ कराने के फेर में पड़कर रोग तथा मौत बुला लेते हैं। साहेब कहते हैं कि "जिन जिन पूजा ते जहँड़ाया" जो लोग भूत-प्रेत की मान्यता एवं पूजा में पड़े वे ठगा गये। जो व्यक्ति वस्तुपरक बुद्धि का परित्याग कर कल्पित भावनाओं में पड़ेगा वह धोखा खायेगा ही।

"अण्ड न पिण्ड न प्राण न देही, कोटि कोटि जिव कौतुक देही।" अण्ड कहते हैं वीर्य या बीज को, यहां अण्ड का अर्थ सूक्ष्म शरीर है। पिण्ड तो स्थूल शरीर है ही। प्राण का अर्थ साफ है। जिस वायु से श्वसन क्रिया होती है वह प्राण है। देही कहते हैं जो देह को धारण करता है उस जीव को। साहेब कहते हैं कि भूत-प्रेत में ये अंड, पिंड, प्राण तथा जीव कुछ भी सिद्ध नहीं होता है। जीव तो एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है। अतएव बीच में भूत-प्रेत की कल्पना ही निरर्थक है। शीशम, साखू, आम आदि के बीज से खड़ाऊ, फाटक, कुर्सी, टेबल आदि नहीं बन सकते, किन्तु जब वे बीज जमीन में पड़कर पौधे के रूप में उगते हैं, फिर पेड़ होकर वर्षों में उनकी लकड़ियां पकती हैं, तब उन्हें काटकर कुर्सी, टेबल आदि बनाये जा सकते हैं। इसी प्रकार जीव जब शरीर छोड़ता है तब उसके साथ केवल सूक्ष्म-शरीर एवं संस्कार रहते हैं, उनके बल पर वह कुछ भी नहीं कर सकता। न वह क्षण में देह बना सकता है और न किसी को सता सकता है। वह तो जब किसी योनि में देह धारण कर लेता है तब कुछ कर सकता है। अतएव भूत-प्रेत केवल काल्पनिक हैं। परन्तु आश्चर्य है कि करोड़ों-करोड़ों लोग इस तमाशे में अपना सिर पटकते हैं।

"बकरी मुरगी कीन्हेउ छेवा, आगल जन्म उन्ह औसर लेवा।" भूत-प्रेत तथा देवी-देवता की मान्यता वाले उनके नाम पर बकरी-मुरगी काटते हैं। वे कहते हैं कि यह भूत-प्रेत तथा देवी-देवता की तृप्ति के लिए किया जाता है। इनके भूत-प्रेतादि ने आज तक किसी सिंह को खाने की बात नहीं की कि वे अपने भक्तों से कहें कि हमारे नाम पर सिंह चढ़ाओ। यह जीभ का स्वार्थी तथा मूढ़ आदमी बकरी-मुरगी को दीन जानकर उनका वध कर देता है। इस जीव-वध के मूल में मनुष्य का केवल मिथ्या स्वार्थ तथा अंधविश्वास है। साहेब कहते हैं कि जो लोग निरपराध प्राणियों का वध करते हैं उन्हें आगे जन्मों में इसका बदला देना पड़ेगा। तुम जिसको मारोगे वह समय पड़ने पर तुमसे बदला लेगा। पाप करने वालों को देर-सबेर अपने कर्मों के फल तो भोगने ही पड़ेंगे।

"कहहिं कबीर सुनो नर लोई, भुतवा के पुजले भुतवा होई।" साहेब कहते हैं कि हे नर लोगो ! भूत की भावना, भूत की पूजा तथा भूत की मान्यता करने से भूत का भ्रम खड़ा होता है। इनकी भावना, मान्यता तथा पूजा-अर्चा छोड़ दो, बस ये कुछ नहीं हैं।

यहां 'नर लोई' शब्द आया है। 'लोई' शब्द जो कबीर साहेब की वाणियों में 'लोगों' के अर्थ में है, कुछ विद्वानों को इस 'लोई' शब्द से एक कल्पित स्त्री का स्वप्न होने लगता है जिसे वे कबीर साहेब से जोड़ने का अपराध करते हैं। परन्तु बीजक में जहां कहीं 'लोई' शब्द आया है 'लोगों' के अर्थ में है। लोगों के अर्थ में 'लोई' शब्द का प्रयोग अन्य कवियों ने भी किया है, जैसे शेख अब्दुल कुद्दूष गंगोही ने कहा "अलखदास आखै सुन लोई।" गोरख बानी में है "बंदत गोरखनाथ सुनो नर लोई।" मधुमालती में "अंत हाथ पछितावा लोई।"[1] इत्यादि।

1. विस्तार के लिए देखें 'कबीर : जीवन और दर्शन' पांचवां अध्याय।

कबीर खड़ा बाजार में

सद्‌गुरु कबीर एक ऐसे महान संत हुए हैं जिन्होंने अपनी सारी बातें परखकर, तर्क की कसौटी में कस कर कही हैं। वे कहां पैदा हुए इसका कोई मूल्य नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि वे नीरू-नीमा की औरस संतान थे। कुछ लोग कहते हैं कि लहरतारा तालाब पर नीरू और नीमा नामक जोलाहा दंपति ने उन्हें एक अबोध शिशु के रूप में पाया और वे उन्हें उठा ले आये। पालन-पोषण किये। झोपड़पट्टियों के बीच उनका पालन-पोषण हुआ। पढ़ने-लिखने की उन्हें क्या सुविधा मिली कहा नहीं जा सकता। उस जमाने में गरीबों के बच्चों को पढ़ने-लिखने की सुविधा नहीं थी और जिन्हें छोटी जाति का कहा जाता है उनके लिए तो पढ़ने पर ही प्रतिबंध था। वे पढ़ ही नहीं सकते थे। समाज से उन्हें कोई बड़ा सहयोग नहीं मिला। उनके पीछे कोई परंपरा नहीं थी, उनका अपना कोई ईश्वरीय ग्रंथ नहीं था। उनका अपना कोई एक महापुरुष नहीं था। बाहरी लौकिक दृष्टि से वे हर प्रकार से अकिंचन थे।

लेकिन आंतरिक दृष्टि से वे हर प्रकार से संपन्न थे। अखण्ड आत्मविश्वास, अखण्ड साहस। अपने ज्ञान पर उन्हें पूरा विश्वास था और इसलिए काशी जो पंडितों-विद्वानों की नगरी है, वहां वे चौराहे पर खड़े होकर निडरतापूर्वक अपनी बात कहते रहे। कोई उनका बाल बांका न कर सका। उनके पास केवल उनका सत्य था। उन्होंने सत्य कहा और सत्य को जिया और उसका संदेश दिया। धीरे-धीरे वे उत्तरोत्तर चमकते चले गये। उनकी वाणी आज भी विज्ञान की कसौटी पर खरी उतरती है। इसका कारण है उनकी निष्पक्षता। हम कहीं भी पक्षपात करेंगे तो पूरा सत्य नहीं कह सकेंगे। पूरा सत्य कहने के लिए सब तरफ से निष्पक्ष होना होगा। इसीलिए वे कहते भी हैं—

कबीर खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूँके आपना, चले हमारे साथ॥

मैं जलती हुई मशाल लेकर चौराहे पर खड़ा हूं। जो मेरे साथ चलना चाहे, मेरा शिष्य और अनुगामी बनना चाहे वह भी अपने हाथ से अपने घर को फूंक दे तब मेरे साथ चले। यहां कबीर साहेब शर्त लगा देते हैं कि मेरे साथ चलना चाहते हो तो पहले अपने घर को फूंक आओ लेकिन समझना यह होगा कि जिस घर को वे फूंकने को कहते हैं, वह कौन-सा घर है। यह घर वह नहीं है जिस घर में आप रहते हैं। उसकी तो जरूरत है विश्राम करने के लिए; ठंडी, गरमी, बरसात से बचने के लिए, शरीर रक्षा के लिए। उस घर को फूंकने की आवश्यकता नहीं है। तब किस घर को फूंकना है? हमारे भीतर जो अहंकार, मोह-माया, राग-द्वेष, पक्षपात का घर है, इस घर को फूंकना होगा।

राग-द्वेष बनाकर, अहंकार बनाकर, मन में मोह-माया रखकर कोई भक्ति के पथ पर चल नहीं सकता। भक्ति और माया, भक्ति और अहंकार दोनों साथ-साथ कैसे रह सकते हैं !

चाखा चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खडग, देखा सुना न कान॥

एक म्यान में दो तलवार कैसे रहेगी ! एक म्यान में एक ही तलवार रहेगी। अहंकार और भक्ति साथ-साथ कैसे चलेंगे ! ज्ञान और माया साथ-साथ दोनों कैसे चलेंगे ! इसलिए अपने अंदर का जो घर है, अहंकार का, राग-द्वेष का, इस घर को फूंकना होगा। तभी हम कल्याण के पथ पर, भक्ति के पथ पर चल सकते हैं। भक्ति की महिमा में सद्‌गुरु कबीर ने कहा है—

अर्ब खर्ब लों दर्ब है, उदय अस्त लों राज।
भक्ति महातम ना तुले, ई सब कौने काज॥

अरबों-खरबों की संपत्ति हो, जहां सूरज उदित होता है वहां से लेकर जहां अस्त होता है अर्थात पूरी पृथ्वी पर राज्य हो, इतनी संपत्ति भी भक्ति की बराबरी नहीं कर सकती। तब ये किस काम के?

जीवन में असली धन क्या है ? जो धन हम-आप जानते हैं—रुपये-पैसे, ये सब केवल जीवन गुजर के लिए हैं। इनसे शांति नहीं मिलेगी, कल्याण नहीं मिलेगा। यह धन तो आता है और चला जाता है। असली धन है राम-धन। कोई कह सकता है कि मैं तो राम-धन को नहीं मानता, तो साहेब कहते हैं आप राम धन न कहो, रहीम-धन कह लो। राम और रहीम तो केवल शब्द हैं। किसी को राम कहने में आपत्ति है तो रहीम कहे, किसी को रहीम कहने में आपत्ति है तो राम कहे। शब्द बदलने से तथ्य थोड़े बदलता है। आप पानी नहीं पीना चाहते तो जल पी लीजिए। जल भी पीना नहीं चाहते तो वाटर पीजिए। चीज तो वही है। लोग शब्दों को लेकर झगड़ते हैं। एक ने ईश्वर कहा, एक ने अल्लाह कहा, एक ने परमात्मा कहा, एक ने खुदा कहा, एक ने राम कहा, एक ने रहीम कहा और लड़ गये। जबकि राम और रहीम का, अल्लाह और परमात्मा का अर्थ एक ही होता है। इसीलिए सद्गुरु कबीर ने कहा—

भाई रे दुइ जगदीश कहाँ ते आया, कहु कौने बौराया।
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि हजरत नाम धराया।
गहना एक कनक ते गहना, यामें भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ कर थापे, एक निमाज एक पूजा।
वोही महादेव वोही महम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये।
को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये।
वेद कितेब पढ़ै वै कुतबा, वै मोलाना वै पाँड़े।
बेगर बेगर नाम धराये, एक मिट्टी के भाँड़े।

मिट्टी तो वही है, बर्तन अलग-अलग बन जाते हैं, नाम अलग-अलग हो जाता है लेकिन मिट्टी में फर्क नहीं है। ऐसे ही राम और रहीम में फर्क नहीं है। हिन्दू और मुसलमान में केवल नाम का फर्क है। हैं तो दोनों आदमी। मिट्टी, पानी, आग, हवा, आकाश इन पंच तत्त्वों से हिन्दुओं का शरीर बना है तो मुसलमानों का शरीर किन तत्त्वों से बना है? उन्हीं तत्त्वों से उनका भी शरीर बना हुआ है। हिन्दुओं के शरीर में लाल रंग का खून होता है और मुसलमानों के शरीर में सफेद खून होता है कि काला होता है? वहां भी तो लाल रंग का है। आप एक हिन्दू के शरीर से खून निकाल लें और एक मुसलमान के शरीर से, एक ब्राह्मण कहे जाने वाले के शरीर से खून निकाल लें और जिसे आप शूद्र कहते हैं उसके शरीर से खून निकाल लें। चारों के खून को ले जाइये डॉक्टर के पास और कहिए डॉक्टर साहब बताइये कौन हिन्दू का खून है, कौन मुसलमान का, कौन ब्राह्मण का खून है और कौन शूद्र का, जांच करके बताइये। कोई डॉक्टर नहीं बता सकता। यह तो हमने शब्द बना लिये हैं और इनको लेकर लड़ते हैं।

आप रास्ते में जा रहे हैं। आपको सड़क पर या सड़क के किनारे चबूतरे पर एक छोटा शिशु मिला। महीने दो महीने का अबोध शिशु उसके पास कोई दूसरा आदमी नहीं है। वह शिशु अकेला है। उस छोटे से शिशु को देखकर क्या आप गारन्टीपूर्वक कह सकेंगे कि यह हिन्दू का बच्चा है या मुसलमान का बच्चा है। शूद्र का बच्चा है कि ब्राह्मण का बच्चा है, कुर्मी का बच्चा है कि तेली का बच्चा है। गारन्टी के साथ नहीं कह सकेंगे लेकिन गारन्टी के साथ कह सकते हैं कि आदमी का बच्चा है। उसको पहचानने में कोई दिक्कत नहीं होगी।

हम आदमी को आदमी के रूप में नहीं पहचानते। आदमी को जाति के रूप में पहचानते हैं। आदमीयत छोटी हो गई, जाति बड़ी हो गई। आदमी का मूल्यांकन जाति के आधार पर न करें। सारी जाति आदमी की बनाई हुई है। आज की जितनी जातियां हैं, ढाई-तीन हजार साल पहले इनमें से एक भी जाति का पता नहीं था।

वेद में आज की किसी जाति का पता नहीं है। उपनिषद् में किसी भी जाति का पता नहीं है, छः शास्त्र जिसे आप कहते हैं उनमें आज की किसी जाति का पता नहीं है। पहले की जातियां अलग थीं। राक्षस, दैत्य, दानव, पिशाच, गंधर्व, वानर, रीक्ष, गिद्ध, नाग पहले की जाति थी। नाग का मतलब सांप नहीं है। नाग का

मतलब है नाग जाति का मनुष्य। आज भी बंगाल में बहुत-से लोग अपने सरनेम में नाग लिखते हैं। ऐसे ही पहले राक्षस, गंधर्व आदि जाति के लोग रहते थे। आज की जातियां नहीं थीं। ये सब तो बदलते रहते हैं।

इसलिए जाति को महत्त्व न दें। आप अपना संगठन करके आगे बढ़ना चाहते हैं तो संगठन बनायें लेकिन वह संगठन दूसरों से लड़ने के लिए, दूसरों को पछाड़ने के लिए नहीं, किन्तु अपनी उन्नति के लिए बनाएं।

बात शुरू हुई थी कि असली धन क्या है? असली धन है राम-धन। उसको राम-धन कह लो, रहीम-धन कह लो। यह एक ऐसा धन है जो कभी खोता नहीं। इस धन को कोई लूट नहीं सकता। मीराबाई का एक भजन है—

पायो जी मैंने रामरतन धन पायो।

खर्च न खूटे चोर न लूटे, दिन-दिन बढ़त सवायो।

राम-रतन धन असली धन है किंतु उस धन का हमें पता ही नहीं है। इसलिए हम कंगाल बनकर भटक रहे हैं। मूलरूप में आप राम हैं, रामरूप हैं। आप दीन-हीन नहीं हैं, लाचार नहीं हैं। आप महान हैं। अपनी महानता को पहचानते नहीं हैं इसलिए दुखी और दरिद्र बनकर भटक रहे हैं।

जैसे किसी सम्राट की बुद्धि में फर्क हो जाये और वह भ्रमवश घूर में जाकर दाना बीनकर खाने लग जाये तो लोगों को आश्चर्य होगा। सम्राट जो हजारों-लाखों को खिला सकता है वह गली में, घूर में, कचड़े में पड़े हुए दाने को बीन-बीनकर खा रहा है कितना दुर्भाग्य! ऐसे ही मूलरूप में आप और हम सम्राट हैं लेकिन उसका ज्ञान नहीं है, इसलिए दर-दर भटक रहे हैं। जिस परमात्मा को, खुदा को, अल्लाह को, गॉड को, मोक्ष को, सुख को, शांति को खोज रहे हैं बाहर, वह बाहर कहीं नहीं है। भ्रम में पड़ गये हैं इसलिए भटकते हैं। कबीर साहेब ने कहा है—

जेहि खोजत कल्पौ गया, घटहि माहिं सो मूर।

बाढ़ी गर्भ गुमान ते, ताते पड़ि गई दूरि॥

जिस परमतत्त्व को, परमात्मा को खोजते-खोजते कल्पों अर्थात अनादि काल का समय बीत गया वह परमात्म तत्त्व, भगवान तत्त्व तो घट के अंदर है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है—

घट में है सूझे नहीं, लानत ऐसो जिंद।

तुलसी यह संसार को, भयो मोतियाबिंद॥

गोस्वामी जी कहते हैं संसार के लोगों को मोतियाबिन्द हो गया है। मोतियाबिन्द होता है तो ठीक से दिखाई नहीं पड़ता है। घट में ही परमात्मा बैठा हुआ है किंतु खोज रहे हैं बाहर तो मिले कैसे? इसलिए भटकना छोड़ें। हकीकत को, वास्तविकता को पहचानें। उसके लिए सारा अहंकार छोड़कर विनम्रतापूर्वक उसके जो महरमी सद्गुरु हैं उनकी शरण में जायें। सद्गुरु के बिना कोई रास्ता नहीं बता सकता।

दुनिया के जितने मत-पंथ हैं सब में गुरु का महत्त्व बताया गया है। गुरु के बिना रास्ता कौन बतायेगा। गुरु ही रास्ता बताने वाला और ज्ञान देने वाला है। लेकिन हम सच्चे गुरु की खोज नहीं करते। सच्चा गुरु कौन है? कुछ लोग कहते हैं हम तो गुरु उसको बनायेंगे जो हमारी जाति का होगा। कुछ लोग कहते हैं हम गुरु उसको बनायेंगे जो हमारी परंपरा का हो, जिसे हमारे दादा-बाबा बनाते आये हैं। कुछ लोग कहते हैं हम गुरु उसको बनायेंगे जिसका बहुत बड़ा मठ हो और कुछ लोग कहते हैं, हम गुरु उसको बनायेंगे जिसके पास बहुत धन हो ताकि समय पड़ने पर गुरु महराज से दो-चार हजार रुपये मांग सकें। यह सब गलत दृष्टिकोण है। गुरु वह है जिसका ज्ञान सही है और जिसका आचरण सही है। ज्ञान के नाम पर भटकाव न हो, भ्रम न हो। कल्पना में न पड़ा हो और जैसा कहता हो वैसा जीवन जीता हो। चरित्रवान, आचरणसंपन्न, वैराग्यवान संत गुरु है, चाहे वह किसी मत-पंथ, परंपरा, संप्रदाय का हो ।

संत किसी संप्रदाय के नहीं होते। किसी संप्रदाय में दीक्षित है यह बात अलग है। लेकिन वे किसी संप्रदाय

के नहीं होते। संत तो संत है। सत्य किस संप्रदाय का है? चन्द्रमा को, सूरज को, धरती-आकाश को आप किस संप्रदाय का मानेंगे। हवा और पानी किस संप्रदाय का है, कौन-सी जाति इनकी है? सूर्य उगा हुआ है उससे जो जितना लाभ ले ले। जाति से क्या मतलब? पानी, हवा, आग, जमीन इनसे जो जितना लाभ ले सकें, जाति से क्या मतलब?

ऐसे ही सत्य किसी जाति का नहीं होता। सत्य सबके भीतर समाया हुआ है। आवश्यकता है उसको समझने की और समझने के लिए निष्पक्ष दृष्टि तथा विनम्रता चाहिए। जो कुछ किसी से किसी ने पाया है, विनम्र बनकर पाया है, अहंकारी बनकर नहीं पाया है। अतः विनम्र बनें, झुकें, सेवा करें। तब कुछ पा सकेंगे।

गीता में महाराज श्री कृष्ण ने जब अर्जुन से कहा कि अर्जुन! ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती। दुनिया में ज्ञान ही सबसे पवित्र चीज है। तो अर्जुन ने पूछा— महाराज, ज्ञान मिलेगा कैसे? कहां जायें? तब महाराज श्री कृष्ण ने कहा—

तिद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

पहली बात है विनम्रतापूर्वक गुरु की शरण में जा कर अपने आप को समर्पित कर दें, फिर सेवा करें। पहले समर्पण, फिर सेवा और सेवा द्वारा जब अपना चित्त निर्मल हो जाये, गुरु प्रसन्न हो जायें तब प्रश्न करें। जब प्रश्न करेंगे तब ज्ञानी पुरुष ज्ञान का उपदेश देंगे। कहीं से कुछ पाना है तो झुकना पड़ेगा, विनम्र बनना पड़ेगा। झुके एवं विनम्र बने बिना तथा अहंकार का त्याग किये बिना आज तक कोई कुछ पा नहीं सका है।

सद्गुरु कबीर कहते हैं—अर्ब खर्ब ले दर्ब है, उदय अस्त लों राज। भक्ति महात्तम ना तुले, ई सब कौने काज॥ अरबों-खरबों की संपत्ति हो और पूरी पृथ्वी पर राज्य हो लेकिन यह सब भक्ति की तुलना में नहीं तुल सकते, भक्ति की बराबरी नहीं कर सकते। क्योंकि धन और राज्य से किसी के मन का क्लेश नहीं मिटा है और नहीं मिटेगा। धन जीवन गुजर के लिए आवश्यक है। उससे जीवन गुजर होता है, सुविधा मिलती है, लेकिन मन की जलन, मन की भूख, मन की पीड़ा धन से नहीं मिटेगी। वह तो मिटेगी जब सही ज्ञान होगा और राम-धन मिलेगा तब।

लेकिन राम-धन ऐसे मिलेगा नहीं, ज्ञान ऐसे मिलेगा नहीं, उसके लिए गुरु के पास जाना पड़ेगा और भक्ति करनी पड़ेगी। बिना भक्ति के किसी का कल्याण नहीं हो सकता। शुरू से लेकर आखिर तक, जब तक जीवन है तब तक भक्ति की जरूरत पड़ेगी। भक्ति का अर्थ है विनम्रता। वैसे भक्ति का पहला अर्थ होता है— सेवा। भक्ति शब्द भज् धातु से बना है जिसका पहला अर्थ है—सेवा करना। शब्दकोश के अनुसार सेवा करना, विभाग करना, छांटना, अलग-अलग करना, बहुत सारे अर्थ हैं भक्ति के।

लेकिन जो प्रचलित अर्थ है, उसमें है इष्ट के प्रति अनुराग होना। "पूज्येष्वनुरागो भक्तिः" पूज्य के प्रति अनुराग, इष्ट के प्रति प्रेम भक्ति है। अब इष्ट कौन हो सकता है, किसको पूज्य मानें, किसकी पूजा करें, किसकी भक्ति करें? यह प्रश्न होता है कि पूजनीय कौन? धन से, विद्या से, पद से कोई पूजनीय नहीं होता है। पूजनीय वह है जिसका जीवन निर्मल है, पवित्र है। भले उसके पास धन-विद्या न हो किन्तु चरित्र रूपी धन उसके पास हो। दुनिया में संतों की पूजा क्यों होती है? क्योंकि उनके पास चरित्र होता है।

पूजनीय कौन है? जिसका जीवन निर्विकार एवं निर्मल है। जिसका जीवन निर्मल है उसकी संगत में रहते-रहते हमें भी अपने जीवन को निर्मल बनाने की प्रेरणा मिलती है। इसलिए निर्मल पुरुषों की उपासना करने की बात बतायी गई है। उपासना का अर्थ होता है निकट बैठना। आग के पास बैठेंगे तो गरमी मिलेगी, पानी के पास बैठेंगे तो शीतलता मिलेगी। इसी प्रकार जिनका जीवन निर्मल है, पवित्र है ऐसे संतों के पास बैठेंगे तो अपने जीवन को निर्मल बनाने की प्रेरणा मिलेगी। इसके बिना शांति नहीं आ सकती है।

निर्मल मन में, निर्मल जीवन में ही आत्मानुभूति होती है। रामचरितमानस में गोस्वामी जी राम से कहलवाते हैं—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

जिसका मन निर्मल है ऐसा व्यक्ति ही मुझे प्राप्त कर सकता है। मुझे छल, कपट, दुराव अच्छा नहीं लगता। अतः भक्ति है मन का समर्पण और भक्ति किसके लिए? निर्मल पुरुष के लिए। क्यों? अपने आपको जानने के लिए, परमात्मा के असली स्वरूप को जानने के लिए।

बिना गुरु की शरण में गये परमतत्त्व क्या है, भगवान क्या है, मोक्ष क्या है, इसे हम नहीं जान सकते। हमने सुना भर है, भगवान, परमात्मा, ईश्वर, ब्रह्म, खुदा, गॉड लेकिन वे हैं कैसे हमारा अनुभव नहीं है। इसलिए गुरु की शरण की आवश्यकता है। कबीर साहेब कहते हैं—गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांय। बलिहारी गुरु आपनो, गोविंद दियो बताय। गुरु गोविन्द की, परमात्मा की वास्तविकता को बताता है और कहता है कि तुम बाहर भटको मत, जिसकी खोज में तुम भटकते हो वह तो तुम्हारे भीतर ही छिपा हुआ है। अलग थोड़े है।

हमारी दृष्टि बाहर है। जैसे हम बाहर से धन पाते हैं, पद पाते हैं, प्रतिष्ठा पाते हैं, खाने-पीने की चीजें पाते हैं, ऐसे ही हम समझते हैं बाहर से हमें परमात्मा भी मिल जायेगा। गड़बड़ी यहीं हो जाती है। आप यह भी समझें कि धन आप पाते हैं, तो धन मिलता है और छूट जाता है। पद मिलता है और छूट जाता है। सम्मान मिलता है और छूट जाता है। जो भी चीज मिलती है छूट जाती है। ऐसे ही यदि परमात्मा मिलेगा तब वह भी छूट जायेगा। मिलेगा तो छूटेगा, नियम है दुनिया का। अब परमात्मा मिला और छूट गया तो फिर कंगाल के कंगाल, खाली के खाली हो गये। वस्तुतः परमात्मा को पाना नहीं है क्योंकि परमात्मा बिछुड़ा ही नहीं है। सब कुछ बिछुड़ सकता है, सब कुछ खो सकता है परमात्मा कैसे बिछुड़ेगा, परमात्मा कैसे खोयेगा! परमात्मा तो आपके अंदर है, आप स्वयं हैं।

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति' गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं—हे अर्जुन! ईश्वर तो सबके हृदय में बैठा हुआ है। सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं—'दिल में खोज दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा।' करीम और राम तुम्हारे दिल में बैठा हुआ है। आप स्वयं परमात्मा रूप हैं। 'घट-घट में वहि साईं बसतु है, कटुक वचन मत बोल रे।' घट में बैठा हुआ है तब याद क्यों नहीं होती? क्योंकि दृष्टि बाहर है। सब लोग नशे में जी रहे हैं। होश में नहीं हैं, जागृत नहीं हैं। अज्ञान की नींद में सोये हुए हैं। नशा जब दूर होगा तब परमात्मत्व का अनुभव होगा। धन का नशा, पद का नशा, प्रतिभा का नशा, बड़ी जाति का नशा, जवानी का नशा, कुल-परंपरा का नशा, साधु-महात्मा होने का नशा, महंत और गुरु होने का नशा, अनेक प्रकार के नशा हैं और इस नशा में हमारा जो परमात्म तत्त्व है वह छिपा हुआ है।

एक पंडित जी थे। बड़े विद्वान और अच्छे प्रवक्ता थे किंतु उनको भांग खाने की आदत थी। पंडित और विद्वान होना अलग बात है और व्यसनमुक्त होना अलग बात। बड़े-बड़े विद्वान-पंडित कहलाने वाले लोग भी किसी-न-किसी गलत आदत में फंसे होते हैं। पंडित जी को भांग खाने की आदत थी। एक दिन भांग का गोला बड़ा हो गया। नशा थोड़ा ज्यादा चढ़ गया। उनकी पत्नी ने कहा—देखो जी, मैं भोजन बना रही हूं, नमक खत्म हो गया है, जाओ दुकान से नमक ले आओ। पंडित जी दुकान पहुंचे। दुकानदार से कहे—भैया! एक किलो नमक दे दो। दुकानदार ने नमक तौल दिया। पंडित ने कहा—नहीं-नहीं, एक किलो हल्दी दे दो। दुकानदार ने नमक छोड़कर हल्दी तौला। पंडित ने कहा—नहीं भैया, हल्दी नहीं, एक किलो चीनी चाहिए। दुकानदार ने चीनी तौला, तो कहा एक किलो धनिया चाहिए। थोड़े-थोड़े में बदला तो दुकानदार ने कहा—पंडित जी, आज तो आप गधे सरीखे बात करते हैं। पंडित ने कहा—तो क्या मैं गधा हो गया हूं? दुकानदार ने कहा—और तो नहीं

क्या, बिलकुल गधे सरीखे ही बात कर रहे हैं। पंडित जी को अब सनक सवार हो गयी कि मैं गधा हो गया। नमक नहीं लिया खाली हाथ लौटा। रास्ते में एक आदमी मिल गया तो उससे कहा—भैया, रुको तो। दुकानदार कहता है कि तुम गधे हो गये हो, आपको कैसे दिखाई पड़ता हूं? वह आदमी समझ गया कि पंडित जी नशे में हैं। उसने भी कहा—पंडित जी, सचमुच गधे हो गये हैं आप तो। अब और निश्चय हो गया कि मैं गधा हो गया हूं। आगे बढ़े एक-दो लोग और मिले। उनसे पूछा, सब मजाक करते चले गये कि सचमुच में पंडित जी आप गधे हो गये हैं। आगे बढ़े उनका मित्र मिला। उन्होंने सोचा सब झूठ बोलेगा, मित्र झूठ नहीं बोलेगा। मित्र सही बात बतायेगा। मित्र से कहा—मित्र जी, लोग कहते हैं कि तुम गधे हो गये हो, आपको कैसे लगता हूं? मित्र ने कहा—मैं तो पहले ही पूछने वाला था कि आप गधा कैसे हो गये? अब पूरा निश्चय हो गया कि मैं गधा हो गया। घर में गये, कहे—पंडितानी-पंडितानी! तेरे करम फूट गये। पंडितानी ने कहा—क्या हुआ? पंडित ने कहा—मैं गधा हो गया। पंडितानी समझ गई कि आज भांग का नशा ज्यादा चढ़ गया है। नशा उतारने की दवाई दी। नशा उतरा तो कहने लगा—अरे, मैं तो गधा नहीं, मनुष्य हूं और मनुष्यों में पंडित हूं, विद्वान हूं। नशा दूर हुआ अपने विद्वता का, पांडित्य का ख्याल हुआ। पंडित का पांडित्य, उनकी विद्वता कहीं गई नहीं थी। नशा के कारण दब गयी थी, नशा दूर हुआ पांडित्य प्रकट हो गया।

ऐसे ही हमारा जो भगवान है हमसे अलग नहीं है। नशा के कारण हम उसे बाहर खोज रहे हैं। कबीर साहेब कहते हैं—"जेहि खोजत कल्पौ गया, घटहि माहि सो मूर। बाढ़ी गर्भ गुमान ते, ताते परि गई दूर।।" जिस मूलतत्त्व को खोजते-खोजते अनादिकाल का समय बीत गया वह घट में ही है। अहंकार बढ़ गया है, इसलिए वह दूर-जैसा लगता है, दूर नहीं है। केवल समझने की आवश्यकता है। हम सब जगह खोजते हैं, अपने भीतर नहीं खोजते और जब तक अपने भीतर खोजेंगे नहीं तब तक मिलेगा भी कैसे। चीज कहीं और हो, खोजे कहीं अलग तो मिले कैसे।

परमात्मा पाना है तो वहां जाना पड़ेगा, वहां खोजना पड़ेगा जहां परमात्मा का निवास है। जहां आप इस समय बैठे हैं, यदि वहां आपको परमात्मा नहीं मिल सकता तो बद्रीनाथ, केदारनाथ और प्रयाग में भी नहीं मिलेगा। तीर्थराज प्रयाग कहा जाता है यदि तीर्थराज प्रयाग में परमात्मा मिलता तो प्रयाग वाले द्वारिका, बद्रीनाथ, केदारनाथ क्यों जाते, उनको तो मिल गया होता। बद्रीनाथ में परमात्मा मिलता तो वहां के लोग बाहर क्यों जाते। आप प्रयागराज जायें, बद्रीनाथ जायें, द्वारिका जायें, जगन्नाथ जायें, गया जायें, जहां जाना है वहां जायें उसके लिए मनाही नहीं है, लेकिन परमात्मा पाने के लिए वहां जायेंगे तो धोखा खायेंगे।

वहां जाने से संतों के दर्शन होंगे। उनका सत्संग सुनने को मिलेगा, अपने देश के जो लोग हैं उनसे परिचय होगा, देश की संस्कृति का ज्ञान होगा, देश की एकता-अखण्डता का ज्ञान होगा और मन में सात्त्विक भावना आयेगी। मन बदलेगा, थोड़ा दुनियादारी, मोह-माया से मन हटेगा। इसलिए वहां जाना चाहिए। जिस तीर्थ में आपका जाने का मन हो वहां जायें, लेकिन परमात्मा पाने के लिए न जायें। किसी तीर्थ में परमात्मा नहीं मिलेगा। तीर्थ में सत्संग के लिए जायें, संतों के दर्शन के लिए जायें, परमात्मा पाने के लिए न जायें, क्योंकि तीर्थों में परमात्मा नहीं है। वह तो आपके भीतर है।

पद्मपुराण में एक श्लोक आता है। शिवजी पार्वती से कहते हैं—"इदं तीर्थं इदं तीर्थं भ्रमन्ति तामसाः जनाः। आत्म तीर्थं न जानाति कथं मोक्ष शृणु प्रिये।" हे प्रिय पार्वती ! सुनो, तामसी लोग यहां तीर्थ है, वहां तीर्थ है, यहां परमात्मा मिलेगा, वहां परमात्मा मिलेगा ऐसा कहते हुए भटकते रहते हैं और भटकते-भटकते मर जाते हैं परमात्मा नहीं मिलता। आत्म-तीर्थ को नहीं जानते, स्वयं को नहीं जानते तो उन्हें मोक्ष कैसे मिलेगा, परमात्मा कैसे मिलेगा। इसलिए अपनी ओर झांकें।

स्वयं को समझें कि मैं कौन हूं? आत्मा को समझ जायेंगे तब परमात्मा की बात भी समझने में आयेगी। आत्मा का ही ज्ञान नहीं है। समझ लेते हैं कि मैं शरीर हूं। एड़ी से चोटी तक काया अपना स्वरूप है, परंतु यह तो पंच भौतिक खोल है। मिट्टी, पानी, आग, हवा, आकाश से निर्मित है। रोज-रोज बदल रहा है। एक दिन जन्मा है और एक दिन इसे मर जाना है। किसका शरीर अजर-अमर रहा है।

परमात्मा तो वह है जो एकरस रहता है और आपके भीतर बैठा हुआ आत्मतत्त्व है। अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं है, दृष्टि बाहर है इसलिए भटकते हैं। इन सारी बातों को जानने के लिए गुरु की आवश्यकता है। धनवान के पास यह नहीं मिलेगा, गुणवान के पास नहीं मिलेगा। संतों के पास, गुरु के पास मिलेगा। गुरु बताते हैं कि हकीकत क्या है। इसलिए भक्ति का महत्त्व है।

गुरु के पास गये किंतु भक्ति-श्रद्धा, विनम्रता नहीं है तो गुरु के ज्ञान पर विश्वास कैसे होगा। गुरु के पास जायें तो अपने आप को पूरी तरह से खाली करके जायें। अंदर कुछ लेकर न जायें। किंतु लोग गुरु के पास जाते हैं तो कोई न कोई कामना लेकर जाते हैं। गुरु के पास इसलिए जायेंगे कि गुरुजी आशीर्वाद दे देंगे तो हमारा धन बढ़ जायेगा, खेती बढ़ जायेगी, लड़के को नौकरी मिल जायेगी, हमारा रोग कट जायेगा, मुकदमा में विजय मिल जायेगी। इस भावना से जायेंगे तो कल्याण कैसे होगा? ज्ञान कैसे मिलेगा?

गुरु के पास जायें तो शुद्ध मन से जायें, सब कामना छोड़ कर जायें। केवल ज्ञान पाने के लिए, आत्मा-परमात्मा को जानने-पाने के लिए जायें और यही नहीं हो पाता है। सबसे पहले अपने मन को कोमल बनायें। आप गुरु के पास या मंदिर जाते हैं। मंदिर में किसी महापुरुष की मूर्ति है आप उसे भगवान मानकर पूजा करने के लिए जाते हैं। हमारे देश में यह बहुत बढ़िया रिवाज है कि जब मंदिर जाते हैं या किसी महात्मा के पास जाते हैं तो लोग फूल लेकर जाते हैं। फूल का हार भी लेकर जाते हैं। अनेक बार आप मंदिर गये होंगे, हाथ जोड़कर विनय-वंदना किये होंगे। संतों के पास गये हैं तो फूल लेकर गये होंगे। फूल भेंट चढ़ाते हैं, इसका अर्थ क्या है? किसलिए फूल लेकर जाते हैं? कभी सोचा-विचारा है? देखा-देखी करते जा रहे हैं। इसलिए कुछ अंतर नहीं होता है। फूल ही क्यों चढ़ाते हैं?

अब फूल ले जाते हैं तो अर्थ भी तो कुछ होगा। इसका अर्थ केवल इतना है, कि फूल खिला हुआ होता है, कोमल होता है और सुगंधित होता है। जब आप मंदिर जायें, मूर्ति के सामने फूल चढ़ायें और हाथ जोड़कर विनय करें या गुरु के पास जाकर फूल देकर विनय करें, हाथ जोड़ें तो यह कामना करें कि हे भगवान, हे गुरुदेव, मैं आपको यह फूल भेंट कर रहा हूं, जैसा यह फूल खिला हुआ, कोमल और सुगंधित है आप ऐसा आशीर्वाद दें कि मेरा जीवन भी ऐसा ही खिला हुआ, कोमल और सुगंधित बन जाये। फूल चढ़ाने का यही अर्थ है। लेकिन यह बात आज तक मन में कभी नहीं आयी। इसलिए मन बदला नहीं।

फूल तो प्राकृतिक रूप से खिला हुआ है। हमारा जीवन कब खिलेगा? जब अहंकार और स्वार्थ दूर हो जायेंगे तब जीवन खिलेगा। कटुता दूर होगी, तब जीवन कोमल बनेगा और सारे मनोविकार दूर हो जायेंगे, तब जीवन सुगंधित बनेगा। भक्ति का यही अर्थ है। भगवान की भक्ति करने का क्या अर्थ है? जैसे भगवान पवित्र है, वैसे ही हमारा जीवन भी पवित्र बने। गुरु की भक्ति करने का अर्थ ही यही है। जैसे गुरु का जीवन पवित्र है ऐसे हमारा जीवन भी पवित्र बने। जो पवित्र है वही तो गुरु है लेकिन यह भावना कब होगी जब अत्यंत विनम्रता होगी, सब प्रकार से समर्पण भाव होगा। बिना मन की पवित्रता के किसी को जीवन में सफलता नहीं मिलेगी, शांति नहीं मिलेगी, कल्याण नहीं होगा। अतः सारी कटुता को दूर करें।

सुबह नींद खुलते ही आप यह समझें कि मेरा घर देव मंदिर है और घर में रहने वाले जितने सदस्य हैं, नर-नारी हैं ये भगवान-भगवती हैं। भक्ति की शुरुआत

अपने घर से करें। केवल मंदिर में भक्ति कर लिये, मठ में जाकर गुरु के सामने भक्ति कर लिये और घर में विनम्र नहीं बने, पवित्र नहीं बने, अपितु मन में अहंकार है, कटुता है तो मंदिर की भक्ति काम नहीं करेगी। पूरा जीवन भक्तिमय हो। कहीं आप जायें तो कोमलतापूर्वक व्यवहार करें और कोमलतापूर्वक बात करें।

सद्गुरु कबीर साहेब कहते हैं—'घट-घट में वहि सांईं बसतु है, कटुक वचन मत बोल रे।' बस एक काम आप कर लें, एक प्रतिज्ञा कर लें कि आज से मैं किसी के साथ कटु वचन नहीं बोलूंगा। कटु वचन नहीं बोलने से हर काम बढ़िया बनेगा। दुर्भाग्य है कि आदमी प्रेम के वचन नहीं बोल पाता। कटु वचन बोलने में हर आदमी आगे है। इसीलिए कलह है, दुख है, अशांति है। दुनिया नरक क्यों बनी जा रही है? कटु वचन और अहंकार के कारण ही।

"घट घट में वहि सांईं बसतु है", जिस परमात्मा को खोजते हो वह तो घट-घट में है। उसकी पूजा, उसकी भक्ति है कटु वचन का त्याग। आप किसी को कुछ दे पायें या न दे पायें मीठी वाणी तो दे सकते हैं। जो किसी को मीठी वाणी भी नहीं दे सकता, किसी से प्रियवचन में, मीठे शब्दों में बात नहीं कर सकता उससे बड़ा दरिद्र और कौन होगा! दुनिया का सबसे बड़ा दरिद्र आदमी वह है जो प्रिय वचनों में बात नहीं करता है। क्या लगता है इसमें? पैसा-धन नहीं लगता, समय नहीं लगता, शक्ति नहीं लगती! चाहे कटुक वचन बोलो और चाहे प्रिय वचन बोलो दोनों में बराबर समय लगेगा, बराबर शक्ति लगेगी।

कटु वचन बोल करके आपका मन दुखी-अशांत रहेगा, सुनने वाले का भी मन दुखी-अशांत रहेगा। प्रिय वचन बोलकर आपका मन प्रसन्न और शांत रहेगा तथा सुनने वाले का मन भी प्रसन्न और शांत रहेगा। इसीलिए कबीर साहेब कहते हैं—"ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय। औरन को शीतल करे, आपहूं शीतल होय।" इसके लिए बहुत पढ़ाई-लिखाई की, धन की, पद की जरूरत नहीं है। अतः भक्ति की शुरुआत अपने घर से करें। जितने सदस्य घर में हैं सब देवी-देवता, भगवान-भगवती हैं। उनके साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार, मीठे वचन में बात पहली भक्ति है। यदि घर में विन्रमता नहीं है, घर में भक्ति नहीं है तो मंदिर में भक्ति क्या करेंगे। दिखावा होगा। लोग दिखावा ज्यादा करते हैं, परिवर्तन इसीलिए नहीं होता।

कबीर साहेब कहते हैं—अरब-खरब की संपत्ति और पूरी दुनिया का राज्य भक्ति की बराबरी नहीं कर सकते। भक्ति से ही कल्याण मिलेगा, भक्ति से ही मुक्ति मिलेगी। भक्ति ही मुक्ति की निसेनी है। 'भक्ति निसेनी मुक्ति की, चढ़े संत सब धाय।' जो भक्ति करना नहीं जानता, सेवा करना नहीं जानता, जिसके मन में समर्पण भावना नहीं है वह मुक्ति क्या पायेगा? भक्ति से ही ज्ञान पैदा होता है, भक्ति से ही वैराग्य पैदा होता है, और जहां भक्ति, ज्ञान, वैराग्य तीनों इकट्ठे हुए वहीं तो मोक्ष मिलेगा, वहीं कल्याण मिलेगा। बिना भक्ति के ज्ञान नहीं मिल सकता, बिना भक्ति के किसी के मन में वैराग्य नहीं होगा, परमात्मा नहीं मिल सकता, मोक्ष नहीं मिल सकता।

इसलिए जीवन को भक्तिमय बनायें। वैसे आदमी अपने ढंग से भक्ति करता है। दुनिया में एक भी आदमी ऐसा नहीं है जो भक्ति न करता हो। भक्ति सब करते हैं। यह बात अलग है कि कौन किसकी भक्ति करता है? कोई बीड़ी की भक्ति करता है, कोई तंबाकू की भक्ति करता है, कोई जुआ की भक्ति करता है, कोई शराब की भक्ति करता है। भक्ति तो सब कर रहे हैं लेकिन बीड़ी की भक्ति करते रहोगे तो कल्याण नहीं मिलेगा! बहुत बड़े भगत हैं, सुबह-शाम मंदिर जाते हैं, किन्तु बीड़ी छूटी नहीं है। मंदिर गये वहां जाकर मूर्ति के सामने अगरबत्ती जला लिये जब मंदिर से निकले तब अगरबत्ती मुंह में चली गई। यह कौन-सी भक्ति है?

उसी मुख से राम कहते हैं, उसी मुख से गुरु-पीर कहते हैं, उसी मुख से रहीम कहते हैं, उसी मुख से भगवान का जप करते हैं और उसी मुख में बड़े प्यार से तंबाकू दबा लिए। मुख ही राम का दरवाजा है। इसी से

तो हम राम, गुरु, पीर, भगवान, देवी, देवता कहते हैं। और इस दरवाजे पर गंदी चीजें लाकर डाल दिये। इस भक्ति से काम नहीं चलेगा। तंबाकू की भक्ति करते-करते जीवन बीत जायेगा इससे बीमारी आयेगी, पैसे की बरबादी होगी, समय की बरबादी होगी। स्वास्थ्य की बरबादी होगी। लेकिन गुरु की भक्ति करो तब, लोगों की भक्ति करो तब तो कल्याण ही हो जायेगा।

इसीलिए जीवन को भक्तिमय बनायें, कोमल बनायें, पवित्र बनायें। जितना हमारे जीवन में विनम्रता आयेगी, समर्पण भावना होगी, उतना ही हमारे जीवन में परमात्मा का अनुभव होता जायेगा, मोक्ष का अनुभव होता जायेगा। कल्याण का रास्ता ही यही है। दुनिया में जितने भी महापुरुष हुए हैं सब भक्ति के पथपर चल करके ही महान हुए हैं इसलिए भक्ति के पथ पर चलें। भक्ति के पथ पर चलने का अर्थ है सबके प्रति कोमल भाव। गोस्वामी जी ने कहा है—सियाराममय सब जग जानी। करहु प्रणाम जोरि जुग पानी। जब सारा संसार सियाराममय है तो धोखा किसको दे रहे हो। केवल जबान से कहते हैं, व्यवहार में वह बात जीवन में उतर नहीं पाती है।

मन्दिर में किसी महापुरुष की मूर्ति रखी है वहां जाकर बहुत प्रेम से विनय-वंदना कर लेते हैं, आरती-पूजा कर लेते हैं किन्तु जब दुकान पर गये तो चने में कंकड़ मिला दिये, घी में डालडा मिला दिये। दफ्तर में गये तो बिना घूस लिये काम नहीं करते हैं, यह कौन-सी भक्ति है। असली भक्ति तो दुकान पर है। असली भगवान आपकी दुकान पर आया हुआ है। आप दुकानदार हैं तो यह समझें कि मेरी दुकान में जितने ग्राहक आ रहे हैं सब भगवान-भगवती आ रहे हैं। मुझे सेवा करने का सुन्दर अवसर मिला हुआ है। उचित सामान दें, उचित मुनाफा लें। उचित मुनाफा नहीं लेंगे तो दुकान कैसे चलेगी, जीवन कैसे चलेगा। मुनाफा लेने के लिए, जीवन चलाने के लिए दुकान कर रहे हैं। कुछ न कुछ मुनाफा लेना पड़ेगा। इसलिए उचित सामान दें, उचित मुनाफा लें। दो नम्बर का सामान मत दें मिलावटी सामान मत दें।

आफिस गये तो यह समझें कि काम करवाने के लिए जितने लोग आये हैं भगवान-भगवती हैं, मुझे सेवा करने का सुन्दर अवसर मिला हुआ है, प्रेम से उनका काम करें। लेकिन तनख्वाह बहुत बढ़ गयी है फिर भी अफसर और क्लर्क बिना घूस लिये काम नहीं करेंगे। दिनभर घूस लेंगे और शाम को जाकर कहेंगे भगवान, क्षमा करना। भगवान क्या करेंगे? आप पाप पर पाप करते जाओ और भगवान ने ठेका ले रखा है कि आपको क्षमा करते जायेंगे! भगवान को धोखा मत दो।

इसलिए असली भगवान को समझें। सारा संसार भगवद् रूप है। सारा संसार देव-मन्दिर है। सबके प्रति भक्ति भावना, सबके प्रति कोमलता का व्यवहार, सच्चाई का व्यवहार, कटुता त्याग करके विन्रमता का व्यवहार यह भक्ति का असली स्वरूप है। जब यह भक्ति जीवन में आयेगी तब विकास होगा, तब ज्ञान और वैराग्य के पथ पर आगे बढ़ेंगे। तब जीवन में परमशान्ति और मोक्ष का अनुभव होगा और जिस परमात्मा को खोज रहे हैं, जिसके लिए भटक रहे हैं उसका अनुभव भी इसी जीवन में हो जायेगा। इसलिए स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े, बूढ़े-बालक, साधु-गृहस्थ सबको सारी अहंता-कटुता का त्यागकर जीवन को कोमल बनाना चाहिए और भक्ति के पथ पर चलना चाहिए ताकि परमगति-मुक्ति का अनुभव कर सकें।

—धर्मेन्द्र दास

अनप्रापत बस्तु को कहा तजै,
प्रापत तजै सो त्यागी है।
असील तुरंग को कहा फेरे,
अफतर फेरे सो बागी है।
जग भव का गावना क्या गावै,
अनुभव गावै सो रागी है।
बन गेह की बासना नास करै,
कबीर सोई बैरागी है।

कहानी

आप बताइये

लेखक—श्री भावसिंह हिरवानी

डॉ. अंजली आपरेशन थियेटर से बाहर आ गयी। आपरेशन की सफलता की चमक उसके चेहरे पर साफ झलक रही थी। मरीज के परिजनों को सफल आपरेशन की जानकारी देकर वह अपने कमरे में चली गई। अभी वह हाथ-मुंह धोकर बैठी ही थी कि उसे गंभीर अवस्था में एक नया मरीज भर्ती होने की सूचना मिली। वह बिना देर किये उठ खड़ी हुई और आई.सी.यू. में चली गई।

मरीज के नाक-मुंह में आक्सीजन मास्क लगा हुआ था और उसकी सांस धौंकनी की तरह चल रही थी। छाती में हो रहे असहनीय दर्द से उसके चेहरे पर पीड़ा के चिह्न उभर आये थे। बालों की सफेदी और चेहरे पर पड़ी झुर्रियां बता रही थीं कि मरीज बूढ़ा और काफी कमजोर हो चुका है। मरीज को देखते ही डॉ. अंजली को लगा कि यह चेहरा कुछ जाना-पहचाना है। लेकिन उसे कुछ याद नहीं आया। उसने सोचा, हो सकता है कोई पुराना मरीज हो, मगर चार्ट में अवधेश का नाम पढ़कर वह एकबारगी चौंक गयी। कहीं यह वही अवधेश तो नहीं, जिसकी वजह से उसकी जिंदगी की दिशा ही बदल गयी। उसने अपनी सोच को झटक दिया और तुरंत मरीज को कुछ जरूरी दवाइयां देने को कहा। मरीज ने जब दवा खा लिया तो अंजली बोली, "तत्काल ई.सी.जी., ईको और इन्जीयोग्राफी करो। तब तक मैं यहीं हूं, रिपोर्ट आने के बाद दवाइयां लिखकर जाऊंगी।" फिर वह अपने कमरे में जाकर बैठ गयी। मगर अवधेश का चेहरा बार-बार उसके स्मृति-पटल पर उभर कर विलीन होने लगा।

आराम की मुद्रा में बैठी अंजली कल्पना के कैनवास पर अवधेश के जर्जर बूढ़े चेहरे और उसके युवावस्था के चेहरे का मिलान करती रही। अंततः उसे पक्का विश्वास हो गया कि यही उसका सहपाठी अवधेश है। उसने एक गहरी निःस्वास खींचकर छोड़ दिया और सोचने लगी, यह जिंदगी भी कितनी अजीब है। यहां कब क्या हो जायेगा, कोई नहीं जानता। आदमी सोचता कुछ है, और होता कुछ है। उसने कहां सोचा था, कि जीवन के आखिरी पड़ाव पर अवधेश एक बार फिर उसके सामने आकर खड़ा हो जायेगा, वह भी मरणासन्न स्थिति में।

क्षणांश में अंजली अतीत की यादों में डूबती चली गई और वर्षों पीछे हाईस्कूल के उस बरामदे में जाकर खड़ी हो गयी, जहां अवधेश उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था। बारहवीं की पढ़ाई पूरी होने के बाद आज यहां से उनकी बिदाई का आखिरी दिन था। आज से उनकी राहें अलग होने वाली थी। अवधेश गणित का छात्र था और अंजली मेडिकल में अपना कैरियर बनाना चाहती थी। वह मन ही मन अवधेश को जीवन साथी के रूप में देखना चाहती थी। अवधेश को भी अंजली का साथ पसंद था। किन्तु दोनों ही चाहते थे कि पढ़ाई पूरी कर आत्मनिर्भर हो जाने के बाद वे फिर मिलेंगे और भावी जीवन का फैसला करेंगे। अवधेश ने कहा, "अंजली, मैं तुमसे मिलने जरूर आऊंगा।" जवाब में अंजली बोली थी "मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी, अपना वादा याद रखना।" और दोनों अलग हो गये थे।

मगर होनी के आगे किसी की नहीं चलती। कोई चतुराई काम नहीं आती। वह इतनी खामोशी से षड्यंत्र करती है कि आदमी बस हक्का-बक्का देखता रह जाता है। अंजली के पिता सरकारी अस्पताल में डॉक्टर थे। उनका स्थानांतरण हो गया और वे शहर छोड़कर परिवार सहित अन्यत्र चले गये। तब आज की तरह टेलीफोन और मोबाईल की सुविधा नहीं थी। पत्र ही एकमात्र संपर्क का साधन था। देहात का रहने वाला अवधेश अपना गांव छोड़कर कालेज की पढ़ाई करने शहर चला गया। इस तरह अवधेश और अंजली का संपर्क पूरी तरह टूट गया और वे अपनी-अपनी पढ़ाई में व्यस्त हो गये।

पढ़ाई पूरी होते ही अंजली की नियुक्ति हृदय रोग विशेषज्ञ के रूप में राजधानी के एक अस्पताल में हो गयी। अंजली के हाथ में जैसे जादू था। शीघ्र ही वह हार्ट के सफल आपरेशन के लिए राजधानी के अलावा दूर-दूर तक विख्यात हो गयी। जीवन के पहले चरण में मुकाम हासिल करने के बाद अब अंजली दूसरे चरण में कदम बढ़ाना चाहती थी। ऐसे में उसे अवधेश की बहुत याद आती है। उसे विश्वास था, अवधेश भी उसके लिए व्याकुल होगा और उसे ढूंढ़ते हुए जरूर आयेगा। अस्पताल से प्रकाशित विज्ञापन में डॉ. अंजली का नाम फोटो सहित प्रकाशित हो रहा था। इससे अंजली को पूरी उम्मीद थी कि अवधेश उसे पहचान लेगा और किसी भी वक्त उससे मिलने आयेगा।

और अंजली अवधेश को लेकर सपने बुनने लगी। उसकी इच्छा होती कि अवधेश के साथ अपनी खुशी और गम बांटे। जब वह अस्पताल से थकी हुई घर लौटे तो एक कप चाय के लिए अवधेश से अनुनय करे और आपस में बतियाते हुए अपनी सारी थकान उतारे। या उसके कंधे पर सिर रखकर अपनी सारी परेशानियों को भूल जाये। दूसरे शादीशुदा जोड़ों की तरह वह भी हाट-बाजार में घूमे-फिरे, हंसे-खिलखिलाये और विपत्ति आने पर एक दूसरे के हाथों को थामें आगे बढ़े। जब लोग अपने बच्चों को लेकर उसके पास इलाज कराने आते तो वह बच्चों की शरारतें देख मुसकुरा उठती। दिन तो बीत जाता पर रात में जब वह बिस्तर पर अकेली होती, मन उसे चैन से सोने नहीं देता, तरह-तरह के सपने दिखाता और अंजली सांसारिक सुखों की चाह में भटकने लगती। धीरे-धीरे दिन सप्ताह, महीने और साल में तब्दील होते चले गये, मगर उसकी उम्मीद टूटती ही नहीं थी। अंजली के माता-पिता उसकी मनोदशा से भलीभांति वाकिफ थे। उन्होंने कहा भी, "अंजली, कब तक अवधेश की प्रतीक्षा करोगी। उसे आना होता तो अब तक आ जाता। न कोई खोज-ख़बर, न कोई शोर-संदेश। बेटी, उसे भूल जा और आगे की जिंदगी के विषय में सोच।"

जवाब में वह कहती, "नहीं, उसने मुझसे आने का वादा किया है, यदि वह आया तो मैं क्या जवाब दूंगी?" उसके मां-बाप कहते, "तो कब तक उसकी प्रतीक्षा करोगी?" अंजली कहती, "शायद सारी उम्र!" और वह भीगी आंखें लिए अपने माता-पिता के सामने से हट जाती। प्रतीक्षा करती अंजली की आंखें थक गयीं पर अवधेश को नहीं आना था सो नहीं आया। उसके लिए अब अस्पताल के कर्मचारी और मरीज ही परिवार के सदस्य बन गये थे। और उसने मरीजों की सेवा को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया।

इसी बीच एक दिन अकस्मात उसके बचपन की सहेली सुजाता अपने पति का इलाज कराने उसके पास आयी थी। डॉ. अंजली की ख्याति वह सुन चुकी थी, पर वह उसके बचपन की सहेली अंजली है, यह नहीं जानती थी। जब सामना हुआ तो उसकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। अंजली भी सारा लोकलाज भूल उससे लिपट गयी थी। सुजाता आश्वस्त हो गयी कि अंजली के इलाज से उसके पति जरूर स्वस्थ हो जायेंगे। अंजली ने भी अपनी सहेली को ढाढस बंधाया था, "चिंता मत करो, तुम्हारे पति बिल्कुल ठीक हो जायेंगे।" अपने पति के लिए सुजाता का समर्पण और त्याग देख अंजली सोचने लगी, कितनी चाहत है एक दूसरे के लिए इनके दिलों में? ऐसे ही क्षणों में बरबस उसे अवधेश की याद आ जाती और वह एक आह भरकर रह जाती।

जांच करने पर पता चला कि सुजाता के पति की स्थिति बहुत नाजुक है। हार्ट के अत्यधिक क्षतिग्रस्त हो जाने के कारण आपरेशन की सफलता संदिग्ध थी। रिपोर्ट के आधार पर विशेषज्ञों की टीम ने निर्णय लिया कि आपरेशन न किया जाये। अंजली ने जब इसकी जानकारी सुजाता को दी तो वह फफक उठी, "अंजली ऐसा मत कहो। किसके सहारे जीऊंगी मैं?" उसकी हालत देख अंजली भी द्रवित हो उठी थी। उस दिन अंजली को अपनी असमर्थता पर बहुत कोफ्त हुई थी। सुजाता हाथ जोड़कर बिलखती अंजली से अपने पति को बचाने की गुहार लगाती रही पर अंजली उसे झूठा दिलासा नहीं देना चाहती थी। बहुत देर तक रोने के बाद सुजाता थोड़ी सहज होकर पूछने लगी, "क्या बिल्कुल भी उम्मीद नहीं है अंजली?" हताश अंजली

बोली थी, "ठीक होने की संभावना केवल पांच प्रतिशत है।" सुजाता दृढ़ स्वर में बोली, "तो आपरेशन कर दो अंजली, मैं किसी को दोष नहीं दूंगी। समझ लूंगी हमारा साथ इतने ही दिनों का था।" सुजाता फिर सुबकने लगी। उसकी दृढ़ता देख अंजली उठ खड़ी हुई और तीसरे दिन आपरेशन करने की बात कहकर वहां से चली गई।

सुजाता ने ये दो दिन दो युगों की तरह बिताये थे। मगर मन में किसी चमत्कार की उम्मीद अब भी बाकी थी। निर्धारित दिन आपरेशन कर दिया गया लेकिन उसके बाद भी असमंजस की स्थिति बनी रही। चौबीस घंटे बीत जाने के बाद भी मरीज को होश नहीं आया था। पर जब तक सांस चल रही थी उम्मीद बाकी थी। सुजाता आशा-निराशा के झूले में झूलती खामोशी से दिन गिन रही थी। आखिर भाग्य ने साथ दिया और पांच दिनों की लंबी प्रतीक्षा के बाद मरीज की बेहोशी टूटी थी। इस वक्त डॉ. अंजली और सुजाता कितनी खुश हुई थी, कहना मुश्किल है। खुशी के अतिरेक में सुजाता बोली थी, "अंजली, मैंने भगवान को नहीं देखा है। मेरे लिए तो तुम्हीं भगवान हो। जब तक जिऊंगी तुम्हारी पूजा करूंगी।"

इसी तरह मरीजों की सेवा करके अंजली आत्म संतोष का अनुभव करती। वह सोचती, लोगों का परिवार तो बहुत छोटा होता है लेकिन उसका परिवार तो सारा समाज है। यही कारण था कि चाहकर भी वह स्वयं को तटस्थ नहीं रख पाती। जब आपरेशन सफल हो जाता है, तो वह खुश हो जाती है, लेकिन लाख कोशिशों के बावजूद जब मरीज मौत के मुंह में समा जाता है तो उसका आत्मविश्वास डगमगाने लगता है।

इसी बीच एक दिन उसने सुना कि शहर में कुछ साधुओं का प्रवचन चल रहा है। ये घर-गृहस्थी त्याग कर वैरागी जीवन जीने वाले विरक्त संत हैं। बात अंजली को कुछ अजीब लगी थी। वह सोचने लगी, मैं सांसारिक सुखों की चाह में दुखी हूं। एक जीवन साथी की कमी अब भी मन को सालती है। उसके बिना यह सारा जीवन निरर्थक और सूना जान पड़ता है। फिर कोई अपना घर-परिवार छोड़कर वैरागी कैसे हो सकता है? मन में उथल-पुथल होने लगी। जब मन नहीं माना तो प्रवचन सुनने चली गई। उसकी राय साधु-संतों के प्रति अच्छी नहीं थी। उसे लगता था, अपने जीवन में असफल थके-हारे लोग ही संसार से भागकर साधु बन जाते हैं। आये दिन समाचार पत्रों और टेलीविजन में कई ढोंगी साधुओं की कारगुजारियों के समाचार पढ़कर मन स्वाभाविक रूप से वितृष्णा से भर जाता है। लेकिन प्रवक्ता की बातें सुन वह सोच में डूब गयी थी।

प्रवचनकर्ता कह रहे थे, "इस संसार में हर इंसान सुख चाहता है। उसे लगता है सांसारिक प्राणी-पदार्थों में सुख है इसलिए वह सारी जिंदगी इन्हीं के पीछे भागता रहता है। धन-संपत्ति अर्जित करना और शादी-विवाह करके सुविधापूर्वक जीवन जीने को ही वह मानव जीवन का परम लक्ष्य समझने लगता है। किन्तु मानव शरीर में विद्यमान आत्मा, जो वह स्वयं है, आनंद का सागर है। अज्ञानतावश वह बाहर सुख ढूंढ़ता है। इस संसार में हमारा संबंध थोड़े दिनों का है। अंततः मृत्यु सामने आकर खड़ी हो जाती है और सब कुछ यहीं छूट जाता है। इसलिए साधु पहले से ही सब कुछ त्याग कर कफनी ओढ़ लेता है। आत्मा का स्वभाव असंग है। वह अकेला आया है और अकेला जायेगा। हमारे प्रिय साथी नहीं मिले या बिछुड़ गये तो समझ लो इतने ही दिनों का साथ था। जो जहां है, अपने कर्तव्य का निर्वहन करे। सबके साथ आदर-प्रेम का व्यवहार करे, उनकी सेवा करे और संतोषपूर्वक जीवन जीये, बस आनंद ही आनंद है। इसी में जीवन की सार्थकता है। जब इस संसार से प्रस्थान की बेला आयेगी तब तुम्हारे मुख पर पश्चाताप नहीं, जीवन को जीकर जाने की खुशी होगी।"

संत की बातों ने अंजली को झकझोर कर रख दिया था। वह आश्चर्यचकित थी कि इस संसार में ऐसे लोग भी हैं जिनकी दृष्टि में धन-संपत्ति, रिश्ते-नाते तथा सांसारिक सुख की चाह केवल एक मृगतृष्णा है। और इन्हें त्याग कर सादगीपूर्ण, तटस्थ जीवन जीने में ही मनुष्य का कल्याण है। कई दिनों तक वह इन्हीं विचारों में उलझी रही। वह तो औरों की तरह इस जीवन में सारे सांसारिक सुखों को भोगकर यहां से जाने में जीवन की

सफलता मानती थी, पर यहां तो सब कुछ एकदम उलटा था। आखिर उसने महसूस किया कि उस साधु की बातें सही हैं। बहुत चाहने पर भी वह अवधेश को जीवन साथी के रूप में कहां पा सकी? उसके पास सब कुछ तो है, फिर भी मन में शांति नहीं है। बड़े परिवार वाले भी कहां सुखी हैं? ठीक ही कहते हैं, सुखी वही है, जिसके मन से संसार की आसक्ति मिट गयी। धीरे-धीरे वह अवधेश के मोह-पाश से मुक्त हो गयी थी। चाह मिट गयी तो चिंता भी चली गयी और अब वह निश्चिंत थी, पूरी तरह द्वन्द्वमुक्त। अस्पताल में वह पहले की ही तरह सबके साथ आदर-प्रेम का व्यवहार करती और पूरी तन्मयता से मरीजों की सेवा करती। हर परिस्थिति में एकरस, न शोक, न मोह। इस तरह उसका जीवन पूरी तरह सहज और सरल हो गया था।

'मैडम, मरीज का टेस्ट रिपोर्ट आ गया है देख लीजिये।" अंजली का सहयोगी डॉक्टर रिपोर्ट लेकर सामने खड़ा था। उसकी आवाज से अंजली की सोच का क्रम टूट गया और वह वर्तमान में लौट आयी, "दिखाओ, क्या स्थिति है?" अंजली रिपोर्ट लेकर देखने लगी, कुछ देर बाद वह बोली, "हार्ट डैमेज हो गया है। पांच दिन दवाई चलने दो, उम्मीद है तब तक आपरेशन के लायक हो जायेगा।" उसने दवाइयां लिखकर रिपोर्ट चार्ट आगे बढ़ा दी और क्वार्टर जाने के लिए उठ खड़ी हुई। उसका सहयोगी मरीज के पास चला गया और अंजली अपने क्वार्टर लौट आयी। क्वार्टर में उसकी भतीजी अल्पना खाना बनाकर डा. अंजली की प्रतीक्षा कर रही थी। दरवाजा खोलते ही वह बोली थी, "बुआ, आज तो बहुत देर हो गयी?"

"हां, अल्पना, एक सीरियस केस आ गया था, इसलिए रुकना पड़ा। चलो, जल्दी खाना लगाओ, मैं कपड़े बदल कर आती हूं।" अंजली अपने कमरे में गयी और थोड़ी देर में तौलिया से हाथ पोंछते हुए खाने के मेज पर आ गयी। रोज की तरह आज भी उनके बीच बातचीत अल्पना की पढ़ाई और घर-गृहस्थी की जरूरतों पर केन्द्रित रही। फिर दोनों अपने-अपने कमरों में चली गयीं। कभी अवधेश को लेकर दिन-रात सोच में डूबी रहने वाली अंजली आज उसे सामने पाकर भी बिल्कुल सहज थी। वह अन्य दिनों की तरह आज भी आराम से चुपचाप सो गयी।

पांच दिनों की दवाई से अवधेश की स्थिति में काफी सुधार हुआ और छठवें दिन आपरेशन करना तय हो गया। इन पांच दिनों में अंजली को पता चल गया कि अवधेश कोई और नहीं बल्कि उसका साथी है। और वह भी उसी की तरह अविवाहित है। और उसके साथ आया परिवार उसके बड़े भाई का है। इस जानकारी के बाद एक बार फिर उसके मन में हलचल हुई थी किन्तु उसने इसे झटक कर अलग कर दिया। रोज सबेरे सहयोगी डॉक्टरों के साथ विजिट के दौरान वह हर मरीज की तरह अवधेश से भी जरूर पूछती, "कैसे हैं अवधेश जी?" और अवधेश कहता "जी, ठीक हूं।" इसके बाद डॉक्टरों को आवश्यक निर्देश देकर वह आगे बढ़ जाती। इस बीच अवधेश भी समझ चुका था कि डॉक्टर अंजली उसकी सहपाठी अंजली ही है। किन्तु आज उनके बीच सिर्फ और सिर्फ एक रिश्ता रह गया है, डॉक्टर और मरीज का।

आखिर आपरेशन का दिन आ गया। एक बार अंजली के मन में आया था कि इस केस को दूसरे डॉक्टर को दे दिया जाये। यदि आपरेशन सफल नहीं हुआ तो वह स्वयं को माफ नहीं कर पायेगी। उसने अवधेश से कहा भी था "अवधेश जी, यहां मुझसे भी ज्यादा योग्य और आपरेशन में दक्ष डॉक्टर हैं, आप चाहें तो वे अपनी सेवायें दे सकते हैं।" जवाब में अवधेश ने हाथ जोड़ते हुए कहा था, "मैडम, आप ही आपरेशन करें, कोई और नहीं।" इस पर अंजली मुस्कुराकर बोली थी, "ओ.के. मैं ही करूंगी।"

सौभाग्य से आपरेशन सफल रहा। और दूसरे दिन से ही उसके स्वास्थ्य में अपेक्षा से अधिक तेजी से सुधार हुआ। नौवें दिन विजिट के दौरान डॉ. अंजली बोली थी, "अवधेश जी, कल आपको घर भेज रहे हैं। निर्देशानुसार दवाई लेते रहें। सारी बातें हमारे डॉक्टर आपको बतायेंगे। फिर भी मन में कुछ शंका हो तो एक बजे मुझसे मिल सकते हैं।" इसके बाद सारे डॉक्टर आगे बढ़ गये थे।

ठीक एक बजे अवधेश को व्हील चेयर में बिठा कर नर्स डॉ. अंजली के पास छोड़ आयी। अंजली मुस्कुराती हुई बोली थी, "हां, अवधेश जी, पूछिये क्या पूछना चाहते हैं?" उसने हाथ जोड़ते हुए कहा, "मैडम, आपने मुझे एक नई जिंदगी दी है। एक एहसान और कर दीजिये। मैं जिंदगी भर एक अपराध-बोध का बोझ लिये जी रहा हूं। आज मेरी पीड़ा सुनकर मुझे इस बोझ से मुक्त कर दीजिये।" अंजली अब भी मुस्कुरा रही थी, "ठीक है, कहिये क्या कहना चाहते हैं?"

अवधेश के मन में खलबली मची हुई थी, फिर भी उसने साहस बटोर कर कहा, "मैडम, क्या आप यह नहीं पूछेंगी कि मैंने अपना वादा क्यों नहीं निभाया?" अंजली हंसती हुई बोली, "नहीं, क्योंकि अब इसका कोई औचित्य नहीं रह गया है।" अवधेश अब गंभीर हो गया था, "फिर आपने शादी क्यों नहीं की?" अंजली सहज भाव से बोली थी, "क्योंकि आपने प्रतीक्षा करने को कहा था, सो प्रतीक्षा करती रही।" इतना सुनते ही अवधेश के चेहरे पर अपराध-बोध का भाव और गहरा हो गया था, "कैसी पागल हैं आप, गलती मैंने की और सजा आप भुगतती रहीं। सचमुच कायर निकला मैं। पर क्या करता? पढ़ाई पूरी होते ही मैं व्याख्याता बनकर सरकारी स्कूल में चला गया था। बस आपसे मिलने की जुगत में लगा ही था कि भैया को अटैक आ गया और वे हमें छोड़कर चले गये। आपको पता है, भैया खेत बेचकर मुझे पढ़ा रहे थे। उनकी मृत्यु के बाद सब कुछ अस्त-व्यस्त हो गया। थोड़ी-सी तो जमीन थी, वह भी बिक चुकी थी। भाभी और दोनों बच्चे बेसहारा हो गये। खेती के अलावा आय का और कोई जरिया न था। बहुत दिनों तक इसी उलझन में रहा कि क्या करूं? एक मन होता था, सारी दुनियादारी छोड़कर आपके पास चला जाऊं, पर दूसरा मन धिक्कारता था, हां चले जाओ, भाभी और बच्चों को उनके हाल पर छोड़ दो। वे मरें या जीयें, तुम्हें क्या करना है?

"मेरी मनोदशा से भाभी वाकिफ थी। वह बोली भी थी, "अवधेश, जाओ अंजली से मिल आओ। वह राह देखती होगी। वह आ जायेगी तो घर में फिर रौनकता लौट आयेगी। मगर मैं अपने भीतर चल रहे द्वन्द्व से उबर नहीं पाया। यदि शादी के बाद मैं भाभी और बच्चों से विमुख हो गया तो उनका क्या होगा? बस, इसी सवाल ने मुझे जकड़ लिया और मैं आपके पास न आ सका।"

अवधेश की बातों से डा. अंजली भी भावुक हो उठी "तो क्या आपको मुझ पर भरोसा नहीं था?" प्रत्युत्तर में अवधेश ने कहा, "नहीं, मुझे खुद पर भरोसा नहीं था।" अवधेश का गला भर आया और उसकी आंखें गीली हो गयीं। अंजली अपनी कुर्सी से उठ खड़ी हुई और उसके कंधों को पकड़कर बोली, "अवधेश जी, मुझे गर्व है कि युवावस्था में मैंने आपको अपने जीवन-साथी के रूप में चाहा था। मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है, आपका त्याग महान है।"

अब अवधेश थोड़ा सहज हो गया था, "नहीं मैडम, आपके सामने तो मैं बौना साबित हुआ। एक वादा निभाने आपने अपनी पूरी जिंदगी दांव पर लगा दी। मुझे माफ कर दीजिये।" अंजली अब पूरी तरह सहज हो गयी थी। वह मुस्कुराती हुई बोली, "ठीक है, मैंने आपको माफ कर दिया। चलिए अब मुस्कुरा दीजिये, क्योंकि हम दोनों ने ही एक सार्थक और सफल जीवन जीया। साथ ही हमने अपना वादा भी निभाया। मैं प्रतीक्षा करती रही और आप आये, क्या हुआ जो उम्र बीत गयी और साथ न रह सके।"

जवाब में अवधेश ने कृतज्ञ भाव से दोनों हाथ जोड़कर सिर झुका लिया। इसी के साथ अंजली ने घंटी का बटन दबा दिया। घंटी बजते ही नर्स आकर अवधेश को वहां से ले गई। फिर अंजली रोज की तरह सहज भाव से उठ खड़ी हुई और अपने क्वार्टर के लिए रवाना हो गयी।

त्याग दोनों ने किया। एक ने फर्ज के आगे अपने प्यार को कुर्बान कर दिया। दूसरे ने अपने प्यार के लिए सबसे नाता तोड़ लिया और समाज सेवा में अपना जीवन होम दिया। आप बताइये, इन दोनों में किसका त्याग महान है? अवधेश का या अंजली का? ❑

प्रवचन

कबीर : एक धर्मवैज्ञानिक

(परम पूज्यवर गुरुदेव श्री अभिलाष साहेब जी द्वारा दिनांक 5-6-2005 को कबीर पारख आश्रम, सूरत में ध्यान शिविर के अवसर पर दिया गया प्रवचन।—प्रस्तुति श्री रामकेश्वर जी)

पूजनीय संत समाज, सज्जनो और देवियो! सद्गुरु कबीर एक ऐसे संत हैं जो धर्म के क्षेत्र में वैज्ञानिक हैं। आंशिक रूप में तो दुनिया के अन्य सन्तों ने भी तर्कपूर्ण बातें कही हैं लेकिन सर्वांश तर्कपूर्ण बात कहने की हिम्मत कबीर साहेब की ही थी। उन्होंने डंके की चोट पर तर्कपूर्ण बातें कहीं।

आप समझ लीजिए कि भारतवर्ष की पहली बात वर्णव्यवस्था है। भारतवर्ष में वर्णव्यवस्था बहुत पुरानी है। ऋग्वेद में इसका कोई खास महत्त्व नहीं है। वहां विद्वान को ब्राह्मण कहते हैं लेकिन अथर्ववेद में ब्राह्मणवाद आ गया है। अथर्ववेद पीछे बना है। उसमें लिखा है कि किसी गृहपति की गाय के पास अगर ब्राह्मण आकर खड़ा हो जाये तो वह गाय ब्राह्मण की ही है। कोई पटेल है और उसके दरवाजे पर गाय बंधी है और ब्राह्मण आकर उसके पास खड़ा हो जाये तो वह पटेल की गाय नहीं रह गयी वह ब्राह्मण की हो गयी। अथर्ववेद में कहा गया है कि ब्राह्मण का ही तो सब धन है, चाहे जहां से ले ले, कोई हर्ज नहीं है।

भारत में वर्णव्यवस्था के तीन संस्करण हैं। पहला संस्करण है काम का बंटवारा। आर्यों का समाज बड़ा हो चला था। उसमें काम का बंटवारा किया गया कि कुछ लोग ज्ञान-विज्ञान की बात, तप, शिक्षा, उपदेश करें। कुछ लोग शासन कार्य देखें, कुछ लोग व्यवसाय करें और कुछ लोग शिल्प का काम करें और बाकी लोग मजदूर रहें।

वेदों में बारम्बार आता है—"पंचजनः।" पंचजन यज्ञ करते हैं। पंचजन के लिए सरस्वती धन लाती है। सरस्वती एक नदी है जो राजस्थान में बहती थी लेकिन आज लुप्त हो चुकी है। पंचजन कौन है? पुरानी भाषा में कहा जाये तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद यही पंचजन का अर्थ है। सायण ने भी अपने भाष्य में यही अर्थ किया है। विदेश के विद्वानों ने दूसरा अर्थ किया है जो इस दिशा में ठीक नहीं है, सायण का ही अर्थ ठीक है। पंचजन हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद यानी अन्त्यज।

चारों वेदों के समस्त विषयों को मैंने एक सौ इक्कीस संदर्भों में रखा है और उसका नाम रखा है—"वेद क्या कहते हैं।" उसमें मैंने पंचजन का भाष्य करते हुए उनका नाम रखा है—ज्ञानी, शासक, व्यवसायी, शिल्पी और श्रमिक और यह वर्णव्यवस्था की बात नहीं है बल्कि पूरी दुनिया में ये पांचों प्रकार के आदमी सदा से हैं और सदा रहेंगे। जिसका ऋग्वेद बारम्बार उच्चारण करता है—पंचजनाः। उस समय यह इतना सरल था कि कहीं इसका अर्थ नहीं किया गया है, खुलासा नहीं किया गया। वेद में उसके मंत्रों का खुलासा रूप भी आया है लेकिन पंचजन का कहीं खुलासा नहीं किया है। इसमें कारण यही है "पंचजन" इतना सामान्य था कि इसको खुलासा करने के लिए ऋषियों को कोई प्रयोजन नहीं लगा। तो पंचजन हैं—ज्ञानी, शासक, व्यवसायी, शिल्पी और श्रमिक, और ये पूरी दुनिया में सभी जगह होते हैं। दुनिया में कहीं भी जाओ वहां ज्ञानी होंगे और शासक होंगे जो शासन-सूत्र को लेकर चलते हैं। व्यवसायी-व्यापारी होंगे। शिल्पी होंगे जो अनेक कला का काम करनेवाले होते हैं और श्रमिक यानी मजदूरवर्ग के लोग होंगे।

ये पांच जन सदा होते रहे हैं और इन्हीं पंचजन के लिए कहा गया है कि "पंचजन यज्ञ करते हैं।" यज्ञ के विषय में ऋषि यह नहीं कहे कि ब्राह्मण यज्ञ करते हैं बल्कि कहे कि पंचजन यज्ञ करते हैं। और अब आप सोचिये कि उनके कथनानुसार निषाद भी यज्ञ करते हैं।

निषाद जो अन्त्यज हैं वे भी यज्ञ करते हैं, तो पुराकाल में कितनी उदारता थी!

मैं कह रहा था कि वर्णव्यवस्था का पहला बंटवारा काम के आधार पर था। काम वर्णव्यवस्था का स्वरूप था। दूसरा बंटवारा था योग्यता के अनुसार वर्ण मानना और यहां तक तो ठीक था, लेकिन तीसरा बंटवारा जन्म से था और तभी से इसका स्वरूप बिगड़ गया।

जब काम के बंटवारे के आधार पर वर्णव्यवस्था थी तब अंतर्जातीय शादी-विवाह, खान-पान आपस में था। आपस में कुछ फर्क नहीं था लेकिन आगे चलकर कहा गया कि, "प्रभु ने शूद्रों को नीच बनाकर भेजा है।"

ईसा के पांच-छः सौ वर्ष पूर्व से लेकर ईसा तक और उसके कुछ बाद तक भी जो पुस्तकें बनीं उनमें लिखा गया है कि प्रभु ने ब्राह्मणों को ऊंचा और शूद्रों को नीचा बनाकर भेजा है। उन ग्रंथों में लिखा गया कि अमुक मंत्र से ब्राह्मण बने, अमुक मंत्र से क्षत्रिय बने और अमुक मंत्र से वैश्य बने लेकिन शूद्र तो किसी भी मंत्र से नहीं बना। इसलिए शूद्र का वेद में अधिकार नहीं है। शूद्र चले तो अगर उसकी परिछाई भी पड़ जाये तो कपड़ा सहित स्नान करो तब शुद्धि होगी। यह सब लिखा गया और कह दिया गया कि यह सब प्रभु की देन है। प्रभु ने शूद्रों से कहा कि उनको वेद-शास्त्र पढ़ने की जरूरत नहीं है, धर्म-कर्म की भी उनको जरूरत नहीं है। वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों की सेवा करे बस उनका मोक्ष है।

जो पतरी गांठते हैं वे जीवनभर पतरी गांठते रहें। जो चाम की जूती बनाते हैं वे जीवनभर जूती बनाते रहें। अगर उनका लड़का ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न है तो भी वह ज्ञान-विज्ञान का कार्य न करे। वह भी जूती गांठे, जूता सिले। ज्ञान-विज्ञान के लिए तो ब्राह्मण वर्ग है। यह प्रभु की देन है। प्रभु ने ऐसा कहा है। प्रभु ने कहा कि ऐ शूद्रो! जैसे आग का सेवन दूर से किया जाता है वैसे ब्राह्मण की भी सेवा तुम दूर से करो क्योंकि ब्राह्मण आग है। अगर उसके निकट जाओगे तो जल जाओगे। ब्राह्मणों के निकट मत जाओ, उनकी दूर से सेवा करो यानी उनका काम कर लो लेकिन उनको छूओ मत।

शूद्रों के द्वारा गेहूं काटा, माड़ा और ओसाया जाता है। उनके पैर से रगड़कर अन्न साफ किया जाता है और लाकर ब्राह्मण के घर में डाल दिया जाता है। तब वह अन्न अछूत नहीं होता है। वहां कहा गया कि कोई हर्ज नहीं है आपके पैरों के नीचे का गेहूं ब्राह्मण खा लेगा लेकिन ब्राह्मण के घर में अगर गेहूं डाल दिये तब फिर उसके बाद ब्राह्मण के घर में न जाओ। गेहूं डाल रहे हो तब तक जाओ और डालकर जब चले आये तब ब्राह्मण के घर के अन्दर में न जाना। यह प्रभु ने कहा है। प्रभु ने रामचरितमानस में कहा है—"पूजिय विप्र शीलगुण हीना। शूद्र न गुणगण ज्ञान प्रवीना॥" यह प्रभु का वचन है। इसप्रकार पुरोहितों ने इतनी मीठी मार मारी है कि हद है। पहले तो इन्होंने प्रभु को खड़ा किया, एक धोखा किया और उसके मुंह में अपनी बात को डालकर निकाल लिया।

हर मत के लोग एक प्रभु बनाते हैं और प्रभु के मुंह में अपनी बातें डालकर निकाल लेते हैं। जो-जो मन हुआ उसको प्रभु के मुंह में डाले और निकाल लिये और कह दिये कि देखो, प्रभु ने कहा है। यह पूरा का पूरा षड्यंत्र है और भयंकर षड्यंत्र है जो प्रभु को रखकर पीछे हुआ है। कबीर उस षड्यंत्र में आग लगा देते हैं जिसमें ब्राह्मणों के द्वारा बनायी गयी सब धोखाधड़ी जलकर एकदम राख हो जाती है। कबीर साहेब काशी में रहते थे और काशीनगरी तब भी पंडितों की नगरी थी और आज भी है। वे काशी के ज्ञानवापी में खड़े हो गये जहां पर काशी विश्वनाथ का मंदिर है। वहां खड़ा होकर मानो साहेब ने कहा—

कबीर खड़ा बाजार में, लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूंके आपना, चले हमारे साथ॥

लुआठी कहते हैं उस लकड़ी को जिसके एक सिरे पर आग जलती रहती है और दूसरे सिरे पर ठीक रहती है। साहेब कहते हैं कि मैं लुआठी लेकर खड़ा हूं। अगर तुम भी मेरा साथ करना चाहते हो तो यह लुआठी ले

जाओ और इससे अपना घर फूंक आओ। अब कौन उनका साथ दे, अपना घर फूंक कर कौन उनके साथ चले? लेकिन जिस घर में हम रहते हैं उस घर को वे फूंकने को नहीं कहते हैं। इसका अर्थ लाक्षणिक है कि जो अहंकार और ममकार का घर बना रखे हो, जो मन का तूदा बना रखे हो उसको फूंक दो।

पंथ चलाने के लिए दो नम्बर का काम मत करो। चमत्कार मत करो। अपने को पब्लिक में पुजवाने के लिए धोखाधड़ी मत करो कि प्रभु ने कहा है। वह कैसा प्रभु है जिसमें मनुष्य के लिए हमदर्दी ही न हो। वह कैसा प्रभु है जिसने किसी को बिना सद्‌गुण के ही पूज्य बना दिया और कोई सद्‌गुण सम्पन्न है तब भी उसको कह दिया कि पूज्य नहीं है। ऐसा क्या कोई प्रभु कहेगा! यह तो प्रभु के नाम पर धोखेबाजी है। इसके लिए कबीर साहेब ने कहा—

ब्राह्मण ही सब कीन्हीं चोरी, ब्राह्मण ही को लागल खोरी॥
ब्राह्मण कीन्हों वेद पुराना, कैसेहु के मोहिं मानुष जाना॥

ब्राह्मणों ने सब चोरियां कीं और इसीलिए "ब्राह्मण ही को लागल खोरी", दोष भी उन्हीं को लगा। ब्राह्मणों ने अपने मन के अनुसार वेद-शास्त्र बना दिया। अपने काम की जो-जो चीजें थीं उनको उसमें लिख डाला।

एक बार राजस्थान में एक बूढ़े संन्यासी मुझे मिले। जहां के कार्यक्रम में मैं था वहां वे मिलने आये तो वे किसी पुराण का नाम लिये और कहे कि महाराज, मेरा मन किया कि उसको पढ़ूं इसलिए उसको खरीद लाया। लेकिन जब उसको पढ़ने बैठा तो देखा कि बारम्बार यही बात उसमें लिखी थी कि "ब्राह्मणों को दान करो-ब्राह्मणों को दान करो' सोने की गाय बना लो और ब्राह्मणों को दान करो। सोने का बिस्तर बना लो यानी बिस्तर बनाओ तो उसमें सोना मढ़ लो तब ब्राह्मण को दान करो।"

उस संन्यासी ने कहा—"ओफ ओह! महाराज! क्या बताऊं मैं तो "ब्राह्मणों को दान करो-दान करो"—यही पढ़ते-पढ़ते ऊब गया और तब मैंने पेट्रोल डालकर उस पुराण को जला दिया। यह भी कोई पुराण है, निरा बकवास है।" मैंने उनसे कहा कि महाराज! आग में क्यों जला दिये। तब वे कहे—न जलाऊं तो क्या करूं। उसमें इतना बकवास था कि जी मेरा ऊब गया।

वेद-शास्त्र का लाक्षणिक अर्थ है धर्म की पोथी। वेद-शास्त्र को धर्म की पोथी बना दिये और उसमें सब अपनी महिमा हांक दिये और शूद्र कहे जानेवाले एक बड़े समाज को अछूत बना दिये। "वेद-शास्त्र में उनको अधिकार नहीं है" इतनी ही बात नहीं है, उनको पढ़ने का भी अधिकार नहीं है। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि पढ़ेंगे तो सब जान जायेंगे। देखो, आज पढ़ रहे हैं तो सब पोलपट्टी जान रहे हैं।

पहले का जमाना मुझे याद है। अपने बचपन में मैंने देखा है कि जिनको निम्न जाति का कहते हैं वे जब दरवाजे पर आते तब उनको मैं बैठने के लिए जगह देता। मेरे में पहले ही से स्वाभाविक विचार आ गया था कि मनुष्य मनुष्य है। बहुत दिनों के बाद कबीर साहेब का जब विचार मिला तब फिर क्या पूछना! जब मैं उनको बैठाना चाहूं तब वे लोग कहें कि "नहीं-नहीं महाराज, हम लोग छोट जाति के हैं। महाराज, हम नीच जाति के हैं।" यह सुनकर मेरे मन में बड़ी तकलीफ हो और मैं सोचने लगूं कि आदमी के मन के कैसे यह हीनभावना की बात बैठा दी गयी है। यह कितनी धोखेबाजी की बात की गयी है! हमारे देश में ऐसी घुट्टी पिलायी गयी कि आदमी यह मान ले कि मैं नीच हूं। इसप्रकार पूरे समाज को बरबाद करके रख दिया गया।

कुछ लोग कहते हैं कि मुसलमानों और ईसाइयों ने हमारे देश को बरबाद कर दिया लेकिन हमारे देश को हमारे देश के पुरोहितों ने ही बरबाद कर दिया। पुरोहितों ने ऐसा निकम्मापन का काम किया जिससे हमारे देश में पंगुता आ गयी।

मुहम्मद नहीं जन्मे थे, ईसा नहीं जन्मे थे उससे पहले हमारे धर्मग्रंथों में लिखा गया कि गाय के दूध, दही और घी के साथ उसकी टट्टी-पेशाब को खाना पुण्य का काम है। यह पंचगव्य है और इसको खाना पुण्य का काम है लेकिन शूद्र कहे जाने वाले व्यक्ति की छाया

अगर पड़ जाये तो कपड़े के सहित नहाओ। यह हमारे यहां के पुरोहितों ने कहा था। फिर देश को किसने बरबाद किया। हमारे यहां हिन्दू समाज के पुरोहितों ने ही हमारे देश को बरबाद किया। ईसाई और मुसलमानों ने कुछ बरबाद नहीं किया।

तुर्क पहले थे जो चीन और रूस के क्षेत्र में होते थे और बड़े बर्बर, लड़ाकू और क्रूर होते थे। जब हजरत मुहम्मद जन्म ले लिये थे उसी समय ह्वेनसांग नाम का एक चीनी यात्री भारत में आया था। तब यहां मुसलमानों का नाम भी नहीं था। उनका थोड़ा प्रचार शुरू हुआ था लेकिन ह्वेनसांग ने अनेक तुर्क देशों का वर्णन किया है। उसने लिखा है कि भारत में अमुक राजा ने देखा कि प्रजा उत्पात कर रही है तो तुर्कों को बुला लिया और तुर्क आये और जनता को पीटकर ठीक कर दिये। उसने लिखा है कि "यहां तुर्क का राज्य है", "यहां तुर्क का राज्य है", अनेक तुर्कों का राज्य ह्वेनसांग ने बताया है। तुर्क बड़े तेज-तर्रार होते थे। ईरान में मुसलिम समाज का जब प्रचार हुआ तो तुर्कों ने मुसलमानों को मारा, उनकी मस्जिदों को फुंका। वे मुसलमानों को तबाह कर देते थे लेकिन धीरे-धीरे वे ही तुर्क मुसलमान हो गये और जब मुसलमान हो गये तब इधर आये।

महमूद गजनवी तुर्क था और वह मुसलमान हो गया। उसने सोमनाथ को लूटा। अठारह बार भारत को उसने लूटा है और यहां के हिन्दू रजवाड़े लोग सब नपुंसक बने बैठे रहे। वे लुटेरे कोई आकाशीय विमान पर चढ़कर नहीं आते थे। विमान तो तब था ही नहीं। वे रथ पर बैठकर या पैदल आते थे। अफगानिस्तान होकर आते थे। खैबर दर्रा पार करते थे, सिंध-पंजाब में प्रवेश करते थे और आराम से उनकी सेना चलती थी। यहां के हिन्दू रजवाड़े संगठित होकर उनपर अगर टूट पड़ते तो उनको खदेड़ देते लेकिन सब नपुंसक होकर बैठे रहे और सोमनाथ का मंदिर लूटा गया और गाड़ी-छकड़ों पर माल भर कर आराम से महमूद गजनवी अपने देश को चला गया। अब आप विचार करिये कि किसने देश को बरबाद किया है, हमारे देश के लोगों ने ही किया है।

उस जमाने में भी ज्ञान की पोथियां लिखी जा रहीं थीं। कर्मकाण्ड और भक्ति पर भी पोथियां लिखी जा रही थीं लेकिन किसी लेखक ने एक भी पंक्ति नहीं लिखा है कि सोमनाथ का मंदिर क्यों लुटा। महमूद गजनवी सोमनाथ की शिवलिंगी को तोड़कर गजनी ले गया, उसका मालटाल तो निकाल लिया और बाकी भाग को अपने पावदान के नीचे रखवा दिया। किसने भारत को नुकसान पहुंचाया? भारत के लोगों ही ने तो। भला दूसरा हमारा क्या नुकसान कर सकता है! हम खुद अपना नुकसान करते हैं। हम कायर हैं, नपुंसक हैं, अहंकारी हैं, स्वार्थी हैं और दम्भी हैं। अपने समाज को हम अपना नहीं मान पाते हैं। अपने भाई को भाई नहीं कह सकते हैं। हम स्वयं सदाचार में दृढ़ नहीं हैं। दूसरा कोई हमारा क्या नुकसान करेगा! हम अपना नुकसान खुद करते हैं। अपनी फूट से, अपने दुराचार से हमारा नुकसान होता है।

हिन्दू संगठन होना चाहिए। मुसलिम संगठन होना चाहिए। सम्प्रदायों का अपना-अपना संगठन होना चाहिए। यह बढ़िया बात है लेकिन उसका अर्थ है कि जो अपने समाज में त्रुटियां हैं उनको निकालना चाहिए। संगठन करें, अपने अन्दर की त्रुटियों को बतावें, लोगों को समझावें, अच्छी-अच्छी बातों का प्रयोग करें और दूसरों से सुन्दर बरताव करें। यह संगठन का मतलब है। लेकिन अगर हिन्दू का संगठन हो तो वह हिन्दुओं को गैर हिन्दुओं के प्रति भड़काये और कहे कि तुम्हें गैर हिन्दू खा जाना चाहते हैं तो क्या यह कोई बढ़िया बात है? हिन्दुओं को चाहिए कि वे अपनी गलतियों को निकालें और गैर हिन्दुओं से प्रेम का व्यवहार करें और उनको भी प्रेम का पाठ पढ़ावें। इसी प्रकार मुसलिम संगठन हो तो मुसलमानों में जो त्रुटियां हों उनको निकालें और गैर मुसलमानों से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करें।

सम्प्रदायों-मजहबों का संगठन खराब नहीं है लेकिन राजनीतिबाजी को लेकर जब संगठन होगा तब

संगठन विकृति पैदा करेगा। कबीर साहेब की ललकार मानव मात्र के लिए थी। उनका विचार था कि धर्म परिवर्तन एक धोखा है। धर्म का क्या कहीं परिवर्तन होता है। धर्म परिवर्तन नहीं मजहब परिवर्तन होता है।

कोई था जो पहले राम-राम कहता वह अब रहीम-रहीम कहने लगा। कोई पहले रहीम-रहीम कहता था लेकिन अब राम-राम कहने लगा। यह मजहब परिवर्तन हुआ, धर्म का परिवर्तन कहां हुआ! धर्म तो शील है और क्या शील को छोड़कर निश्शील होने के लिए कोई कहता है। ईसा नहीं कहते, मुहम्मद नहीं कहते, कबीर नहीं कहते, राम नहीं कहते, कृष्ण नहीं कहते, कोई नहीं कहता है। सब कहते हैं शीलवान बनो। शील, क्षमा, दया, करुणा, प्रेम, भक्ति, ज्ञान यह सब धर्म है और इनको छोड़कर क्रोध, काम, लोभ, मोह में रहो, यह कौन कहेगा। इसलिए धर्म का परिवर्तन होता है यह महा झूठ है। मजहब का परिवर्तन होता है यही सत्य है। धर्मांतरण नहीं होता है मजहब का अंतरण होता है।

कबीर साहेब ने धर्म परिवर्तन को कभी अच्छा नहीं माना और इसीलिए उन्होंने पंडित और मुल्ला दोनों को ललकारा। मुल्लाओं को ललकारा और कहा—"दर की बात कहो दरवेशा, बादशाह है कौने वेशा।" ऐ फकीर! ऐ मुल्लाजी! बताओ, तुम ईश्वर को पा गये हो तो उसका दरवाजा कहां है। "लाल जर्द की नाना बाना, कौन सुरति को करौ सलामा" वह लाल कपड़ा पहनता है कि पीला पहनता है। ऐसी फटकार उन्होंने उस समय लगायी जिस समय देश में मुसलिम शासन था। उसी समय कबीर साहेब ने ललकारते हुए मुसलमानों को कहा था कि तुम लोग बरगलाते हो लोगों को कि मुसलमान बन जाओ हम स्वर्ग दिखा देंगे। बताओ, कहां स्वर्ग धरे हो। क्या स्वर्ग तुम्हारी डिबिया में है? पंडितों को भी कबीर ने फटकारा। उन्होंने सबको फटकारा और कहा कि समता से रहो, प्रेम से रहो। मनुष्य मनुष्य से अगर बैर करे तो क्या यह कोई धर्म है। यह धर्म नहीं है। धर्म है कि मनुष्य मनुष्य से प्रेम करे। मानव से उनकी पहली अपील है कि एक मानव दूसरे मानव से मिले तो जाति न पूछे, वर्ण न पूछे, सम्प्रदाय न पूछे, प्रेम का बरताव करे। मनुष्य मात्र से प्रेम करे।

हमारा देश एक विशाल राष्ट्र है। राष्ट्र में रहनेवाले जितने लोग हैं वही राष्ट्र हैं। सबसे प्रेम का बरताव करो। भारतवर्ष की जो जमीन है वह अकेली राष्ट्र नहीं है। उस जमीन पर रहने वाले मनुष्य राष्ट्र हैं, प्राणी राष्ट्र हैं। अगर जमीन राष्ट्र है तो चन्द्रलोक भी राष्ट्र है लेकिन चन्द्रलोक को कोई भी राष्ट्र नहीं मानेगा क्योंकि वहां एक कीड़ा भी नहीं रेंग रहा है। इस धरती पर जो रेंग रहे हैं, चल-फिर रहे हैं वे ही राष्ट्र हैं।

हमारा भारत देश एक राष्ट्र है और यहां के सभी मनुष्य मिलकर राष्ट्र हैं। अगर कहो कि केवल हिन्दू राष्ट्र है तो गैर हिन्दू का क्या होगा। पूरी दुनिया में भारत ही एक ऐसा देश है जिसमें सर्वाधिक मुसलमान हैं। केवल इण्डोनेशिया में यहां से एक करोड़ कुछ लाख मुसलमान ज्यादा हैं, नहीं तो पूरी दुनिया में कहीं भी इतने मुसलमान नहीं हैं जितने हमारे यहां हैं।

मुसलमानों की संख्या सोलह-सत्तरह करोड़ तक कहते थे लेकिन वह बीस करोड़ तक पहुंच गयी होगी और इतने मुसलमान पूरे विश्व के किसी भी देश में नहीं हैं। ईसाई भी कई करोड़ हैं। तो इन लोगों को कहां कर दोगे और इन लोगों से दुव्यर्वहार करके क्या देश को चला पाओगे और यह क्या मनुष्यता है। उनसे दुर्व्यवहार करोगे फिर चार दिनों के बाद वही दुर्व्यवहार अपने में करोगे और हिन्दू-हिन्दू कटोगे। देखते नहीं हो, कितने मुसलिम देशों को कि वहां मुसलमान ही मुसलमान को काट रहे हैं। पाकिस्तान में मसजिदों को कौन फूंकता है। क्या कोई हिन्दू फूंकता है। बम कौन फेंकता है? मुसलमान ही तो यह सब करते हैं।

एक घटना सुनाता हूं जो बहुत पुरानी बात नहीं है, अंग्रेज गवर्नमेंट के जमाने की बात है और दक्षिण भारत की घटना है। कहीं से विष्णु जी की मूर्ति को शैव लोग

उखाड़कर ले आये और शिवजी के मंदिर के सामने उस मूर्ति को उतान करके लिटा दिये। शैव लोग उसी की छाती पर चढ़कर शिवजी को पूजने जाते थे। उससे विष्णु के पुजारी बहुत पीड़ित थे लेकिन क्या करें बेचारे। वहां दक्षिण भारत में वैष्णव कम हैं और शैव ज्यादा हैं। एक वेश्या थी जो वहां के राजा की प्रेयसी थी। उससे विष्णु का पुजारी और वैष्णव समाज के लोग मिले और कहे कि हमारा एक काम राजा से करवा दीजिए।

वेश्या ने पूछा कि कौन-सा काम है। तब उन लोगों ने बताया कि हमारे विष्णु भगवान की मूर्ति शिवमंदिर के सामने उतान लिटाकर रखी गयी है और उसी पर चढ़कर शैव लोग शिवलिंगी पूजने जाते हैं। हम लोग बहुत पीड़ित हैं। यह मूर्ति हमें दिला दी जाये और इतना अपमान न किया जाये।

वेश्या ने राजा से कहा लेकिन राजा भी बिलकुल स्ववश नहीं होता है। वह भी प्रजा के अधीन होता है। वह गायकवाड़ राजा था उसने अम्बेडकर को नौकरी दी थी। इससे कुपित होकर हिन्दू कहे जाने वाले कुछ लोगों ने उस राजा पर अम्बेडकर को निकाल देने के लिए दबाव डाले। वे भी हिन्दू लोग थे लेकिन उनको मैं क्या विशेषण दूं क्योंकि और विशेषण देना ठीक न होगा। वे थे तो हिन्दू ही लेकिन दो पैरवाले जानवर ही उनको कहने का मन होता है क्योंकि जो चार पैर वाले जानवर होते हैं वे भी वैसे नहीं हो सकते।

उन लोगों ने गायकवाड़ राजा पर ऐसा दबाव डाला कि वह बेचारा ठण्डा हो गया और अंत में बाबा साहब अम्बेडकर को वहां से अपनी सामग्री लेकर चल देना पड़ा। राजा नहीं चाहता था कि अम्बेडकर जी जायें। ऐसे ब्राह्मण भी थे जो अम्बेडकर बाबा के सहायक थे लेकिन उनकी भी चलती न थी। ऐसा तो हिन्दू समाज है।

वेश्या को प्रयास करते-करते कुछ दिन लगा। राजा ने सोचा और वातावरण बनाया। उसने जब शैवों को मना लिया तब विष्णु की मूर्ति छोड़ी गयी और वैष्णव लोग उसको उठाकर ले गये, धोये-साफ किये और मंदिर में रखे और उसमें प्राण प्रतिष्ठा किये और पूजा किये। ऐसी घटना घटी थी। यह घटना सच्ची है और शायद भगवदाचार्य महाराज जो रामानन्द सम्प्रदाय के बहुत बड़े आचार्य और विद्वान थे उनकी वाणी में मैंने पढ़ा था।

तो भाई! दुख की बात है कि हमारे देश में हमारे यहां के पुरोहितों ने बड़ी मीठी बात की कि "प्रभु की देन है, प्रभु ने कहा है कि शूद्र अछूत होते हैं। ये केवल सेवा करें, इनका मोक्ष हो जायेगा"—और ऐसा कहकर भयंकर षड्यन्त्र किया है। प्रभु का परदा लगाकर यह भयंकर पाप किया गया है।

कबीर साहेब ने इस परदे को फाड़ दिया और कहा—कोई ब्राह्मण-शूद्र नहीं है। मनुष्य मनुष्य है और सबका समान अधिकार है। हिन्दू-मुसलमान कुछ नहीं है। मनुष्य केवल मनुष्य है। न हमें हिन्दू की जरूरत है न मुसलमान की। न हमें ब्राह्मण की जरूरत है न शूद्र की। हमें जरूरत है तो केवल मनुष्य की। मनुष्य से प्यार करो और यह बात माने बिना देश का कल्याण न होगा। आज भी जब दंगा होता है तब कबीर साहेब की वाणी तुरन्त फैलायी जाने लगती है।

देश के जितने लोग हैं सब भारतीय हैं और भारत में जो गैर हिन्दू हैं अगर उनमें से किसी को यह घमण्ड हो कि हम मुसलमान हैं और जो हमारा मुसलमानी देश है वहां हम जायेंगे तो वे पिछला इतिहास पढ़ लें और जान लें कि जिन लोगों ने पाकिस्तान बनवाया और पाकिस्तान को अपना देश मानकर वहां गये तो उनकी आज क्या दशा है?

क्या मुसलमान के लिए मुसलमान बड़े प्यारे हैं, और हिन्दू के लिए हिन्दू बड़े प्यारे हैं। क्या ब्राह्मण ब्राह्मण के लिए बड़े प्यारे हैं। अरे, ब्राह्मण ही ब्राह्मण को लूटते हैं, हिन्दू हिन्दू को लूटते हैं, मुसलमान ही मुसलमान को लूटते हैं, पटेल ही को पटेल लूटते हैं और कायस्थ ही कायस्थ को ठगते हैं। इसलिए न जाति की जरूरत है न वर्ण की जरूरत है और न सम्प्रदाय की

जरूरत है। जरूरत मनुष्य की है, जरूरत मनुष्यता की है और मनुष्यता प्रेम है। यह भावना जब तक नहीं होगी तब तक राष्ट्र न समृद्ध होगा, न स्वस्थ होगा और न उसका कल्याण होगा। भूल जाओ कि भारत में कोई दूसरा है। यह याद रखो कि भारत में जितने हैं सब अपने प्यारे हैं।

अयोध्या में विवाद छिड़ा कि राम का राज्य होने वाला है। यह गलत है भरत का राज्य होना चाहिए। कैकेयी पहले तो ठीक समझी लेकिन मंथरा के कहने पर भड़क गयी। यह कथा आपलोग जानते हैं। महाराज राम को पता चला तो तुरन्त तैयार हो गये और कहे कि मैं वन को जाना चाहता हूं। वे वन न जाकर अयोध्या में ही रहना चाहते तो कौन उनको वन भेज सकता था। पूरी सत्ता उनको चाहती थी लेकिन अयोध्या में विवाद न हो इसलिए चुपचाप वे वन चले गये।

अगर राजनेता राम को लेंगे तो राम को बरबाद करेंगे, कबीर को लेंगे तो कबीर को बरबाद करेंगे, बुद्ध को लेंगे तो बुद्ध को बरबाद करेंगे, उनकी छवि को खराब करेंगे। बुद्ध को भुनाया जाता है। अब राजनीति में कबीर को भी भुनानेवाले तैयार हैं। अगर कबीर को ये लोग लिये तो कबीर का चेहरा खराब करेंगे। राजनेता जिसको छू लेंगे उसका नाश करेंगे। इसलिए राजनेताओं से सावधान रहो और मनुष्य मनुष्य प्रेम से रहो।

पार्टी की बात है तो जिसको जहां श्रद्धा हो वहां का प्रचार करो, उसको वोट दो और दिलाओ। उसके लिए कोई मतभेद नहीं है। सनसनीखेज बात डालकर लोगों को बरगलाना, धर्म का नाम लेकर अपना उल्लू सीधा करना, भगवान और राम का नाम लेकर उल्लू सीधा करना यह देश को धोखा देना है। इसलिए जाति-पांति, सम्प्रदाय इन सब के रोगों का साहेब ने निवारण किया और उन्होंने कहा कि शुद्ध मनुष्य बनकर रहो।

चमत्कार और दैवी कल्पना का उन्होंने खण्डन किया। उन्होंने कहा कि अलौकिकता सब झूठ है। मनुष्य केवल मनुष्य है। हर सम्प्रदाय का मानव केवल मानव है। हर सम्प्रदाय केवल मनुष्य के बनाये हैं। हर पोथी मनुष्य की रचना है। कोई सम्प्रदाय सत्य का एकाधिकारी ठेकेदार नहीं है। मानवमात्र समानरूप से कल्याण का अधिकारी है। चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय में रहे कोई हर्ज नहीं है, केवल सच्चा ज्ञान चाहिए, सच्चा आचरण चाहिए। सच्ची रहनी और सच्चे बोध से कल्याण है।

सम्प्रदाय के विषय में साहेब ने बेलाग बातें कहीं। बीजक उनका मुख्य ग्रंथ है। कबीर साहेब की और भी वाणियां हैं लेकिन बीजक उनकी मुख्य वाणी है उसको आप देखिये। पूरा बीजक मालूम होता है दहकती आग है। कहीं कूड़ा-कचरा उसमें रह नहीं सकता है। सर्वत्र सच्चा ज्ञान, निर्भय ज्ञान है और डर की कहीं कोई बात नहीं है। कबीर साहेब ने यह सोच लिया था कि मौत एक ही बार होनी है, दो बार नहीं। इसलिए जो सच है उसको कहूंगा। मरने से डरने की जरूरत नहीं और एक सौ उन्नीस वर्ष, सात माह, पचीस दिन रहकर छब्बीसवें दिन शरीर छोड़े।

एक लेखक ने आश्चर्य करते हुए लिखा है कि यह सवा सौ वर्षों तक कबीर के धड़ पर सिर बना कैसे रह गया! बड़ा चुटिला उसने लिखा है। इसीलिए कबीरपंथी मान लेते हैं कि वे अलौकिक थे। उनपर तलवार पड़ती थी लेकिन तलवार निकल जाती थी सिर नहीं कटता था। ऐसी बात नहीं थी। तलवार जिसके सिर पर पड़ेगी उसका सिर कटकर रहेगा। वास्तव में कबीर निर्मल पुरुष थे और कांच की तरह अन्दर-बाहर साफ थे। उनकी बातों से समाज में क्षोभ होता था। पंडित और मुल्ला दोनों क्षोभित होते थे लेकिन निकट आकर देखते-समझते थे तब कहते थे कि अरे भाई, यह तो निदाग आदमी है। यह किसी का नहीं है।

जब मुल्ला को कबीर फटकारते थे तो मुल्ला समझते थे कि यह बाबा तो हिन्दू का पक्षधर है लेकिन जब कबीर पंडित की ओर घूमते थे और उसकी खबर

जब लेने लगते थे तब पंडित समझते थे कि यह तो मुल्ला का पक्षधर है। लेकिन मुल्ला और पंडित दोनों जब उनकी बातें समझे तब कहे कि यह तो किसी का पक्षधर नहीं है। यह तो सत्य का पक्षधर है। इसलिए थोड़े ही दिनों में कबीर का इतना प्रभाव हुआ कि वह जमाना पैदल चलने का था उसी जमाने में अपनी नौजवानी ही में पूरा उत्तरी भारत कबीर वाणी से गूंज गया।

कबीर वाणी का प्रभाव पूरे उत्तरी भारत में हो गया था। उत्तरी भारत का जो इलाका है उसमें गुजरात, राजस्थान, पंजाब से लेकर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, बंगाल सहित सारा उत्तरी हिस्सा आता है और इतना व्यापक प्रभाव हुआ।

एक पंडित पहली बार मेरी सभा में इलाहाबाद आये। वे प्रोफेसर थे। उन्होंने भाषण में कहा कि हमलोग टेलीविजन से, अखबारों से, पत्र-पत्रिकाओं से रेडियो से अपना नाम फैलाना चाहते हैं किन्तु एक जिला में प्रसिद्ध नहीं हो पाते हैं और बूढ़े हो जाते हैं किन्तु कबीर अपनी जवानी की अवस्था में ही, जब न कोई पत्र था, न पत्रिका थी, न अखबार था, न रेडियो था, न टेलीविजन था, पूरे उत्तरी भारत में गूंज गये। यह घोर आश्चर्य है। यह कैसे हुआ! यही है कबीर का निरालापन। वे अन्दर-बाहर साफ थे। कोई बात मनवाने के चक्कर में वे नहीं थे।

कबीर कहते थे कि मैं कहता हूं उसको समझो। समझ में आये तो मानो नहीं तो छोड़ो। भगवान बनकर उनको कहलवाने की साध नहीं थी। अवतार बनकर भी कहलवाने की साध उनको नहीं थी। कोई भी धोखापट्टी नहीं थी केवल सीधी-सी बात थी। मानवता उनकी पक्की और शुद्ध है और ज्ञान उनका पक्का और शुद्ध है और रहनी तो ऐसी कि उन्होंने कहीं भी क्षमा नहीं किया—"मूस बिलाइ एक संग, कहु कैसे रहि जाय।" कुसंग का त्याग करो। शुद्ध संग करो। संयम से रहो। रहनी पवित्र, ज्ञान पवित्र, मानवता परिशुद्ध हो यह उनकी घोषणा थी।

जैसे हीरे के अनेक पहल, सब अपने में ज्योतिर्मय होते हैं उसी प्रकार कबीर के सभी पक्ष अपने आप में निराले हैं और ज्योतिर्मय हैं। यह बात डॉ. सम्पूर्णानन्द ने लिखा है।

उनको वैष्णव लोग परम वैष्णव मानते हैं। वेदान्ती उनको परम वेदान्ती मानते हैं। आर्य समाजी उनको आर्य समाजी मानते हैं। ब्रह्मवादी उनको ब्रह्मवादी मानते हैं। ईश्वरवादी उनको ईश्वरवादी मानते हैं। आत्मवादी उनको आत्मवादी मानते हैं और पारखी उनको पारखी मानते हैं।

व्यंग्य लेखक लोग मानते हैं कि कबीर व्यंग्य लेखकों के आचार्य हैं। मुसलिम संत उनको महान सूफी संत मानते हैं। योगी उनको परमयोगी और साहित्यकार उनको महाकवि मानते हैं। समाज सुधारक उनको महान समाज सुधारक मानते हैं। इतने पहल उनके हैं और सब ज्योतिर्मय हैं। वे निर्मल और निष्पक्ष हैं।

मेरा आपसे यही अनुरोध है कि कबीर की वाणी आप पढ़ें। बीजक पढ़ें और बीजक सहायक जो और भी उनकी वाणियां हैं उनको आप पढ़ें और मनन-चिंतन करें। कबीर की वाणी पूरी मानवता को, पूरे मनुष्य को जोड़ने वाली वाणी है। प्राणिमात्र पर करुणा बिखेरने वाली उनकी वाणी है। प्रेम की वाणी है। उनकी वाणी में जो फटकार है वह प्रेम के लिए है। "तुम हिन्दू बनते हो, मुसलमान बनते हो, ब्राह्मण बनते हो, शूद्र बनते हो" यह उनकी फटकार है। इसका मतलब है कि आपस में प्रेम से रहो। तुम्हीं सम्प्रदाय वाले बनते हो। तुम्हीं मोक्ष के ठेकेदार हो यह उनकी फटकार है। क्यों? क्योंकि प्यार के लिए है कि सत्य सबमें समान है।

पंडित देखहु हृदय विचारी, को पुरुषा को नारी।
सहज समाना घट घट बोले, वाके चरित अनूपा।
वाको नाम काह कहि लीजै, न वाके वर्ण न रूपा।
तैं मैं क्या करसी नर बौरे, क्या मेरा क्या तेरा।
राम खुदाय शक्ति शिव एकै, कहुं धौं काहि निहोरा।

राम, खुदा, शिव और शक्ति एक ही बात है। क्यों विवाद करते हो? तो यह जो फटकार है प्यार के लिए

है। आपरेशन अच्छा करने के लिए है। डॉक्टर अच्छा आपरेशन करता है, छूरा लगाता है तो बढ़िया ही तो है। डॉक्टर अच्छा आपरेशन करे, मल निकाल दे, मवाद निकाल दे और शरीर स्वस्थ हो जाये। कबीर साहेब का भी आपरेशन भयंकर है, पक्का है। सभी जानते हैं कि कबीर ने गहरा आपरेशन किया है लेकिन उनका आपरेशन विध्वंसात्मक नहीं रचनात्मक है। "ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय" यह उन्होंने कहा है।

आप लोग उनकी वाणी को पढ़ें और उनपर बोलें और उनका प्रचार करें। जिससे मानव में मानवता आये। ऊंच-नीच की भावना दूर हो। मनुष्य केवल मनुष्य है। छुआछूत पाखण्ड है। छूआछूत स्वच्छता को लेकर है। किसी से घृणा करने और किसी को नीचा दिखाने के लिए नहीं है। किसी का हाथ अशुद्ध है तो अछूत है और हाथ धो लिया तो कोई अछूत नहीं है। कोई हो पवित्र आचरण से नहीं रहता है तो उसके हाथ का भोजन कैसे किया जाये। अगर शुद्ध है तो कोई भी हो उसके हाथ का बनाया भोजन करने में कोई हर्ज नहीं है। इन बातों पर जोर डाला जाये और इन बातों का प्रचार किया जाये! मनुष्यता पर जोर डाला जाये। चमत्कार रहित शुद्ध आत्मज्ञान पर जोर डाला जाये। कबीर साहेब की यह सब देन है और यह पुरानी और नई पीढ़ी को जोड़नेवाली है।

पुरानी पीढ़ी वाले पोंगापंथी हैं और नई पीढ़ी वाले सब विध्वंसक हैं। वे सबका खण्डन करते हैं। कबीर वाणी ऐसी है जो दोनों को जोड़ती है। नयी पीढ़ी के लोग जितना खण्डन करते हैं उससे अधिक खण्डन कबीर साहेब ने आज से पांच सौ वर्ष पहले कर दिया है लेकिन उनका खण्डन मण्डन के लिए है। इसलिए कबीर वाणी का मनन-चिंतन किया जाये तो नई और पुरानी पीढ़ी आपस में मिल जायेगी और रचनात्मक दिशा में समाज आगे बढ़ेगा। इसी के साथ सद्गुरु कबीर की स्मृति में अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए और आप लोगों के लिए शुभकामना करते हुए मैं अपनी वाणी को विराम देता हूं।

मृत्यु

रचयिता—बरसाइत दास महन्त

मृत्यु सच्ची प्रेमिका है, मृत्यु प्यारी माशुक़ा।
मृत्यु अपना हमसफ़र है, मृत्यु अपना है ख़ुदा॥ 1

मृत्यु शान्ति का समुद्र है, और ईश्वर का रूप।
मृत्यु अपना स्वरूप है, हैं इसके अगणित रूप॥ 2

जिन्दगी वह क्रूर औरत, जो कष्ट देती है सदा।
मौत है पतिव्रता नारी, जो ध्यान रखती सर्वथा॥ 3

जिन्दगी तो बेवफ़ा है, हर दफ़ा देती है दगा।
मौत है इक सती नारी, जो साथ रहती सर्वदा॥ 4

मृत्यु दुःख का अंत है, और जिन्दगी शुरुआत।
मृत्यु नव परभात है, थी बात कही सुकरात॥ 5

जिन्दगी एक इम्तिहां है, व मृत्यु है परिणाम।
जिन्दगी एक दौड़ है, और मृत्यु है विश्राम॥ 6

मृत्यु में आनन्द है, सुख-शान्ति और उत्कर्ष।
जिन्दगी में शोक है, सन्ताप और संघर्ष॥ 7

जिन्दगी एक स्वप्न है, और मृत्यु सच है विज्ञ का।
जिन्दगी एक यज्ञ है, और मृत्यु फल है यज्ञ का॥ 8

मृत्यु ही माता, मृत्यु पिता है, मृत्यु मेरा भगवान।
मृत्यु ही पत्नी, मृत्यु प्रेयसी, मृत्यु है मित्र महान॥ 9

मृत्यु ही दर्शन है कबीर का, कृष्ण का गीता ज्ञान।
कैवल यही है महावीर का, बुद्ध का है निर्वाण॥ 10

सद्गुरु श्री अभिलाष ने भी कही राज़ की बात।
मौत के आगे जीवन है, डरने की नहिं बात॥ 11

मरूँ मरूँ तू क्या करे, मेरी मरे बलाय।
मरना था सो मरि गया, अब को मरने जाय॥
मरिये तो मरि जाइये, छुटि परे जंजार।
ऐसा मरना क्यों मरे, दिन में सौ सौ बार॥

साथी तेरा वही है

रचयिता—जितेन्द्र दास

साथी तेरा वही है, जो
जीवन का पथ बताया है।
कठिन परिस्थिति में भी,
चलकर पथ दिखलाया है॥

निःस्वार्थ भाव से जो
दिल में प्रेम बसाया है।
वही है साथी तेरा, जो
हर पल खुशियाँ लाया है॥

जीवन के क्षण क्षण,
खुद को याद दिलाया है।
नहीं भ्रम झांई दिल में,
दया धरम अपनाया है॥

साँच झूठ निर्णय करके,
सिद्ध कर दिखलाया है।
सहिष्णुता के भाव से,
जो साथ निभाया है॥

संग करो ऐसे साथी का,
बोध विचार जगाया है।
जितेन्द्र निज में स्थित होना,
जिसने हमें सिखाया है॥

आइने के सामने
सजता संवरता है हर कोई,
मगर आइनों सी साफ जिन्दगी
जीता है कोई-कोई

–अज्ञात

मदर तेरेसा के वचन

- सर्वदा माफी माँगने का साहस करें।
- सदा दयालु, सदा करुणामय बनें रहें।
- न्याय देने में नियन्त्रण रखें।
- अपने आपको निरुत्साहित न होने दें।
- हर क्षण मूल्यवान है–अपना समय नष्ट न करें।
- एक दूसरे की अच्छाई को जानने की कोशिश करें।
- तब तक दें जब तक दर्द न महसूस हो।
- अगर आप सचमुच में ईश्वर को प्यार करना चाहते हैं, तो एक दूसरे को प्यार करें।
- हर छोटे कार्य को बेहद प्रेम के साथ करें।
- अपना हृदय साफ रखें।
- प्रार्थना करना सीखें, प्रार्थना प्यार से करें, और अक्सर प्रार्थना करें।
- अपने परिवार में एक दूसरे के लिए समय बनायें।
- कभी झूठ न बोलें।
- केवल विश्वास करें, आप ईश्वर के लिए मूल्यवान हैं।
- जो भी करें प्यार से करें।
- बहुत लोग भूल चुके हैं प्यार क्या है...इसलिए प्यार का आनन्द देना शुरू करें।
- पूर्वाग्रह से दूर रहें।
- एक दूसरे के साथ मुस्कुराएँ।
- ध्यानपूर्वक सुनने का कष्ट करें।
- अपनी प्रतिभा का प्रयोग ईश्वर को महिमान्वित करने के लिए करें।
- प्रायः हम नज़र तो डालते हैं पर देखते नहीं, आइये नज़र डालने के साथ देखें भी।
- अपमानित होने पर स्वीकार करें एवं अर्पित करें।
- आरोप लगाने की बजाय माफ करना सीखें।
- क्षमा करना सीखें।
- उत्साह प्यार का दूसरा नाम है, उस उत्साह को न खोयें।

तू बन जा दिवाना राम के

रचयिता—हेमन्त हरिलाल साहू

इस दुनिया की मृगतृष्णा में, सबने धोखा खाया है।
जागे वे बड़भागी भइया, नहीं तो मूल गंवाया है।
साधू विरागी और गृहस्थी, सब बने दिवाना मान के॥

काम क्रोध मद लोभ मोह में, निशिदिन रहा भुलाया।
आशा तृष्णा की भट्ठी में, जीव दुःसह दुःख पाया।
सकल कामना जगत के त्यागो, भोगो सुख निष्काम के॥

मंदिर मस्जिद गिरजा गुरुद्वारा, ये सब गजब बना लो।
महल अटारी बंगला गाड़ी, आश्रम खूब सजा लो।
भीतर से यदि द्वन्द्व न छुटा, ये सब नींद हराम के॥

निर्मल मन सोई जन मोहि पावा, कहते हैं रघुराई।
प्रेम पाट का चोलना पहने, नाचे कबीरा भाई।
प्रेम बिना ये जीवन सूना, प्रेम रूप भगवान के॥

अल्लाह राम करीम केशव, हरि हजरत नाहिं खुदाई।
आतम राम ना जाने दुनिया, भरमत फिरे बौराई।
सरल सहज अरु निर्मल पावन, सन्त चरण अभिराम के॥

स्वारथ वश सब रिश्ता नाता, स्वारथ का संसार है।
करो भजन शम दम साधन, जीवन का यही सार है।
परम शान्ति सुख धाम तुमहीं हो, बस त्याग करो अभिमान के॥

पुर्वल जनम के भाग जो जागे, सन्त चरण चित लाया।
चेतन अमल सहज सुख राशि, घटहि में अलख लखाया।
मानव तेरा गुण बड़ा है, नहीं मोल में चाम के॥

आये हैं सो जाना निश्चित, फिर जोड़ जोड़ क्या पावोगे।
जो मिला है वो छुट जायेंगे, साथ में क्या ले जावोगे।
'हेमन्त' ना जाने ये तन कब छुटे, सुबह मंझनिया शाम के॥

खुद को सुधारने में इतना व्यस्त हो जाओ कि किसी की गलतियां देखने के लिए आपके पास समय ही न बचे।

किसने परमशान्ति पाया है

रचयिता—जितेन्द्र दास

पत्थर का बूत बनाकर,
उसे तूने महान बनाया है।
खुद से नफरत करके,
जीवन नरक बनाया है॥

बाघ चीते शेरों को,
इण्टरनेशनल बनाया है।
बकरे मुरगे गायों को,
वेजीटेबल बनाया है॥

वेद कुरान बाइबिल की,
ऐसी दुरगति बनाया है।
राग द्वेष धरम लड़ाई के लिए,
टैंक उसे बनाया है॥

दोष लगाकर जमाना को,
ऐसा बहाना बनाया है।
खुद का तो होश नहीं, औ
दुनिया को भरमाया है॥

बोध विचार करो यारो,
दुनिया किसने बनाया है।
जितेन्द्र निजस्थित हुए बिना,
किसने परमशान्ति पाया है॥

सपने ऐसे देखें मानों आप
सदा जीते रहेंगे, किंतु जियें ऐसे
मानो आज का दिन आपके
जीवन का आखिरी दिन है

–अज्ञात